भारत का विधि आयोग

बन्दी शनाख्त अधिनियम, 1920

के सम्बन्ध में

सत्तासीवीं रिपोर्ट

अगस्त, 1980

न्यायमूर्ति पी० वी० दीक्षित

महर

अध्यक्ष

विधि आयोग

भारत सरकार

नई दिल्ली, 29 अगस्त, 1980

प्रिय मंत्री महोदय,

मैं इस पत्र के साथ "बन्दी शनाख्त अधिनियम 1920" के सम्बन्ध में विधि आयोग की सत्तासीवीं रिपोर्ट भेज रहा रहा हूं।

2. इस अधिनियम का उद्देश्य कुछ अपराधों के सम्बन्ध में दोषसिद्ध या गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों की नाप, उनके अंगुलि-चिह्न पद-छाप और फोटोग्राफ लेने के लिए विधिक प्राधिकार का उपबन्ध करना है। यह अधिनियम लगभग साठ वर्ष पहले अधिनियमित किया गया था। तब से अब तक अपराधों का पता लगाने में अंगुलि-चिह्नों, पद-छापों और शरीर के अन्य अंगों का नाप तथा फोटोग्राफों का वैज्ञानिक उपयोग करने में बहुत प्रगति हुई है। अत: इस अधिनियम को अपराध-अन्वेषण की आधुनिक प्रणाली के अनुरूप बनाने के लिए इसका पुनरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। विधि आयोग ने इस रिपोर्ट में इस अधिनियम में अनेक संशोधन करने का सुझाव दिया है।

3. हम श्री पी० एन० बख्शी, सदस्य-सचिव, के बहुत ही आभारी हैं जिन्होंने यह रिपोर्ट तैयार की है। श्री वी० वी० वझे ने जो सहायता प्रदान की है उसके लिए हम उन्हें भी धन्यवाद देना चाहते हैं।

सादर,

भवदीय,

हस्ता०

(पी० वी० दीक्षित)

श्री पी० शिवशंकर,

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री, भारत सरकार,

नई दिल्ली।

81-M/J(N)57MofLJ&CA—1

विषय-सूची

पृष्ठ

अध्याय 1—विषय प्रवेश	1
अध्याय 2—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	4
अध्याय 3—अधिनियम का महत्व : इसकी साधारण स्कीम और सदृश विधियां	6
अध्याय 4—प्रारम्भिक बातें : धारा 1 और धारा 2	12
अध्याय 5—नाप अंगुलि-चिह्न और फोटोग्राफ लिया जाना—धारा 3 से धारा 5 तक	15
अध्याय 6—आनुषंगिक उपबन्ध—धारा 6 से धारा 9 तक	27
अध्याय 7—सिफारिशों का संक्षेप	30
परिशिष्ट 1—अंगुलि-चिह्न और नाप के संबंध में इंग्लिश विधि	32
परिशिष्ट 2—अंगुलि-चिह्न और नाप के संबंध में अमरीकी विधि	37
परिशिष्ट 3—संविधान के अनुच्छेद 21 के संबंध में चुने हुए मामले	42
परिशिष्ट 4—मूल उपबन्धों का विश्लेषण	45

अध्याय 1

विषय प्रवेश

रिपोर्ट का उद्भव और विस्तार।

1.1. अपराध-अन्वेषण के क्षेत्र में बन्दी शनाख्त अधिनियम, 1920 के महत्व को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि साठ वर्ष पहले अधिनियमित इस अधिनियम पर नए सिरे से विचार किया जाए और इसे अपराध-अन्वेषण की आधुनिक प्रणाली के अनुरूप बनाने के लिए इसका पुनरीक्षण किया जाए। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि उच्चतम न्यायालय ने अभी हाल में[1] ही अपने एक निर्णय में न्यायालय के समक्ष उठाए गए प्रश्न के बारे में शनाख्त से सम्बन्धित विधि का संशोधन करने के लिए सुझाव दिया है।[2]

इस अधिनियम की जांच करने पर यह पता चला है कि इस सम्पूर्ण अधिनियम का पुनरीक्षण करना आवश्यक है। तद्नुसार इस रिपोर्ट में बन्दी शनाख्त अधिनियम, 1920 की चर्चा संपूर्ण रूप में की गई है।

पहले व्यापक जांच का न किया जाना।

1.2. 1920 के इस अधिनियम का प्रारूपण उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए किया गया था जो इसके अधिनियम के ठीक पहले समय पर अनुभव की गई थी। जैसा कि तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाए गए विधान के प्रारूपण में प्रायः होता है[3] वैसा ही इसके अधिनियमन के समय भी 1920 के अधिनियमन से सम्बन्धित विषय की व्यापक जांच नहीं की गई थी। यह बात उन अनेक संशोधनों से बहुत स्पष्ट हो जाती है जो विभिन्न राज्यों द्वारा इस अधिनियम में किए गए हैं। अभी तक इस अधिनियम का पुनरीक्षण अखिल भारतीय स्तर पर नहीं किया गया है। अनेक कारणों से ऐसा पुनरीक्षण करना आवश्यक प्रतीत होता है। इनमें से एक कारण तो वह व्यावहारिक कठिनाई है जिसका उल्लेख उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में किया है।[4]

अभी तक किए गए विचार-विमर्श का विस्तार।

1.3. पिछले लगभग बीस एक वर्ष के दौरान भारत में पुलिस द्वारा शनाख्त के लिए अपनाए गए विभिन्न तरीकों के बारे में जो विचार-विमर्श हुआ है वह मुख्यतया उस संवैधानिक प्रतिषेध तक ही केन्द्रित रहा है जिसका अधिकथन संविधान के अनुच्छेद 20(3) में किया गया है और वह यह है कि किसी अभियुक्त को ऐसा कथन करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जो उसे स्वयं अपराध में फंसाने वाला हो। शनाख्त से सम्बन्धित विशिष्ट प्रकार के साक्ष्य के मूल्यांकन के बारे में भी कभी-कभी विचार-विमर्श हुआ है। उच्चतम न्यायालय के अनेक निर्णयों के परिणामस्वरूप इस संवैधानिक प्रतिषेध का प्रभाव काफी स्पष्ट हो गया है। वर्तमान विचार-विमर्श के लिए इस विषय का जहां तक सम्बन्ध है उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि "संवाद विहीन साक्ष्य" (बातचीत किए बिना साक्ष्य) उपाप्त करना संविधान द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं है।

यहां यह बात फिर बता देनी चाहिए कि शनाख्त के लिए विशिष्ट प्रकार के साक्ष्य के मूल्यांकन के बारे में स्थिति अब विभिन्न न्यायालयों के विनिश्चयों के परिणामस्वरूप स्पष्ट हो गई है।

विधिक पहलू पर ध्यान देने की आवश्यकता।

1.4. किन्तु केवल इस कारण से कि विगत समय में इस विषय से सम्बन्धित निर्णयज विधि (केस ला) संवैधानिक विवाद्यकों से अत्यधिक प्रभावित रहा है साधारण विधि के एक महत्वपूर्ण पहलू की ओर ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ और वह पहलू यह है कि संवाद विहीन (बातचीत किए बिना साक्ष्य की) सामग्री की प्राप्ति के लिए भी बन्दी के शरीर से तनिक भी हस्तक्षेप करने या उसे बाध्य करने के लिए बल का प्रयोग करने के वास्ते कानूनी प्राधिकार अपेक्षित है और ऐसा प्राधिकार न होने पर ऐसी किसी कार्रवाई से अपकृत्य का दायित्व प्रत्यक्षतः उत्पन्न हो जाएगा। यदि इस पहलू को ध्यान में रखा जाता है तो ऐसी प्रत्येक कार्रवाई के लिए, जो पुलिस या कोई अन्वेषण-अभिकरण (एजेन्सी) करना चाहे किसी स्पष्ट और विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध की आवश्यकता के बारे में कोई विवाद नहीं उठ सकता। अतः इस रिपोर्ट के आगामी अध्यायों में मुख्य रूप से इसी विषय पर विचार-विमर्श करना आवश्यक है।

---

1. **स्टेट आफ यू० पी० बनाम राम बाबू मिश्र**, (1980), 2 एस० सी० सी० भाग 3, पृष्ठ 343, 346, पैरा 8 (मई, 1980 का संस्करण)।
2. आगे पैरा 5.25 देखिए।
3. आगे अध्याय 2 देखिए।
4. ऊपर पैरा 1.1 देखिए।

अन्वेषण में अपनाए गए प्रपीड़न के तरीके ।

1.5. अपराध के अन्वेषण की प्रक्रिया मुख्यतया पिछली घटनाएं अभिनिश्चित करने के लिए आवश्यक तथ्य सम्बन्धी सामग्री का संग्रह करना है । आधुनिक युग में यह प्रक्रिया इस प्रकार की है कि इसमें अनेक वैज्ञानिक विद्या की शाखाओं से सहायता लेनी पड़ती है । इस प्रक्रिया से सुसंगत जानकारी पुलिस को विभिन्न तरीकों से प्राप्त होती है और वैज्ञानिक साक्ष्य एकत्र करने में विभिन्न प्रकार का प्रपीड़न करना पड़ता है किन्तु, इसके बारे में एक साधारण विधिक सिद्धान्त बता देना आवश्यक है यद्यपि वह प्रारम्भिक सिद्धान्त है । वह यह है कि जिस देश में विधि-सम्मत शासन विद्यमान है उस देश में ऐसा प्रपीड़न करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से विधिक मंजूरी अवश्य होनी चाहिए ।

अतः ऐसे उपबन्धों की आवश्यकता है जिनमें यह स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया जाए कि अन्वेषण में प्रपीड़न के कौन से उपाय किए जा सकते हैं ।

पुलिस की शक्तियां ।

1.6. पुलिस को विनिर्दिष्ट मामलों में गिरफ्तार करने की शक्ति प्राप्त है । किन्तु केवल गिरफ्तार करने से गिरफ्तार व्यक्ति की तलाशी लेने या उस व्यक्ति के शरीर से हस्तक्षेप करने जैसे प्रपीड़न के अन्य उपाय अपनाने का अधिकार नहीं मिल जाता ।[1] विविक्षित रूप से यह उपधारणा की जाती है कि अधिनियम में कामन ला का नियम अन्तर्निहित है और वही नियम इस विषय से सम्बन्धित विनिर्दिष्ट तथा सुनिश्चित उपबन्धों का आधार होता है ।[2] इस रिपोर्ट में यह जांच करने का प्रयास किया गया है कि इन उपबन्धों में सुधार करने की कितनी आवश्यकता है ।

सन्तुलन की आवश्यकता ।

1.7. अतः यह रिपोर्ट प्रपीड़न के उन उपायों के सम्बन्ध में है जो अन्वेषण की प्रक्रियाओं में अपनाए जाते हैं । प्रपीड़न के इन उपायों की व्यवस्था करने में व्यक्ति के अधिकारों और अपराध रोकने तथा दण्ड देने की दृष्टि से समाज के हितों की आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन बनाए रखना आवश्यक है । यह आसान काम नहीं है । इसमें अनेक कठिनाइयां हैं ।

यह ऐसी स्थिति है जिसमें दो प्रतियोगी हितों में संघर्ष होता है—एक तो नागरिक का हित है जिसमें उसकी शारीरिक गोपनीयता के विरुद्ध आक्रमण से उसका संरक्षण है और दूसरा राज्य का हित है जिसमें ऐसा साक्ष्य प्राप्त करना है जो अपराध के किए जाने से सम्बन्धित है । इन दोनों हितों में विरोध है ।

मूल समस्या इन दो विरोधी हितों के बीच समन्वय करने की है । हम "गोपनीयता" शब्द का प्रयोग उन मूल्यों को दर्शित करने के लिए करते हैं जिन्हें सभ्य समाज इसलिए कायम रखना चाहता है कि अपराध में फंसे व्यक्ति की गोपनीयता और उसका नाम न बताए जाने की मानवीय इच्छा का संरक्षण किया जा सके और उसे शारीरिक हस्तक्षेप से भी स्वतंत्र रहने दिया जाए । इस रिपोर्ट में इस विषय पर विचार-विमर्श करने का उद्देश्य यह नहीं है कि सभी रूपों में इस अधिकार को भारतीय विधि द्वारा मान्यता प्रदान की जाए ।

संविधान का अनुच्छेद विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया ।

1.8. इन दो विरोधी हितों में समन्वय करने की आवश्यकता पर जोर डालने के लिए जो सामान्य बात ऊपर कही गई है उसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" की विचारधारा से सम्बन्धित विकासशील विधि का भी उल्लेख कर देना समुचित होगा जिसे हमने अपनी सिफारिशें करते समय ध्यान में रखा है ।[3]

अभी पिछले कुछ वर्षों में इस विचारधारा का जो न्यायिक अर्थान्वियन किया गया है उससे उक्त अनुच्छेद में नए आयाम जुड़े हैं और इसका विस्तार बढ़ गया है ।[3] हम मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि उच्चतम न्यायलय के विनिश्चयों का प्रभाव यह पड़ा है कि राज्य द्वारा की गई किसी कार्रवाई के उचित होने के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वह संविधान के भाग 3 के अन्य उपबन्धों द्वारा गारंटी दिए गए मूल अधिकारों के अनुरूप हो बल्कि वह अनुच्छेद 21 की कसौटी पर भी ठीक होनी चाहिए और यदि ऐसी कार्रवाई वैयक्तिक स्वतंत्रता को किसी ऐसी रीति से निर्बन्धित करती है जो विधि द्वारा स्थापित "प्रक्रिया" की शर्त को जिस रूप में उसका न्यायिक अर्थान्वियन किया गया है अतिक्रमण करती है तो उस कार्रवाई को चुनौती दी जा सकती है ।

---

1. दि किंग बनाम क्वीन (1968) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 391, 394 एफ, 398 (प्रिवी कौंसिल) ।
2. आगे अध्याय 2 देखिए ।
3. परिशिष्ट 3 देखिए ।

न्यायिक निर्णयों में निर्देशक सिद्धान्त ।

1.9. इसका विकास अपेक्षाकृत अभी हाल में ही हुआ है और वैयक्तिक स्वतंत्रता को निर्बन्धित करने वाले विधान के सभी पहलू न्यायालयों के समक्ष नहीं उठाए गए हैं जिनसे कि उनकी जांच उच्चतम न्यायालय[1] द्वारा अधिकथित कसौटी[2] को ध्यान में रखते हुए की जा सके। अतः बहुत विश्वास के साथ यह प्राख्यान नहीं किया जा सकता कि वैयक्तिक स्वतंत्रता पर लगाया गया कोई निर्बन्धन उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित कसौटी पर ठीक होगा या नहीं। किन्तु अभी तक इस विषय पर दिए गए न्यायिक निर्णयों[3] से जो निर्देशक सिद्धान्त उपलब्ध हैं उनको हमने अपनी सिफारिशें तैयार करते समय ध्यान में रखा है। हम इसे विशेष रूप से इस कारण आवश्यक समझते हैं कि यह विषय मानव अधिकारों के एक संवेदनशील क्षेत्र से सम्बन्धित है—अर्थात् शारीरिक सुरक्षा और राज्य की प्रेरणा से शारीरिक हस्तक्षेप, भले ही ऐसा हस्तक्षेप अपराध रोकने और पता लगाने के निमित्त ही किया गया हो।

विचार-विमर्श की स्कीम।

1.10. इस अधिनियम की विषय-वस्तु के समुचित परिप्रेक्ष्य के लिए हम पहले इसके महत्व, इसकी साधारण स्कीम और इसके इतिहास की चर्चा करना चाहते हैं और तब इसके उपबन्धों की जांच करेंगे। ये उपबन्ध तीन मुख्य प्रवर्गों में आते हैं (i) प्रारम्भिक, (ii) प्रवर्तनशील[4] और (iii) आनुषंगिक[5]। इस अधिनियम का राज्य क्षेत्रीय विस्तार और इस अधिनियम में दी गई परिभाषाओं से मिलकर प्रारम्भिक उपबन्ध बनते हैं जिन पर पहले विचार किया जाएगा और इसके पश्चात् प्रवर्तनशील उपबन्धों की समीक्षा की जाएगी। हम अपनी रिपोर्ट के अन्त में इस अधिनियम के आनुषंगिक उपबन्धों पर विचार करेंगे।

संवैधानिक क्षमता

1.11. इस रिपोर्ट में विचारणीय कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें एक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न की जांच करना पड़ेगा—वह यह है कि कहां तक इस अधिनियम की विषय-वस्तु संसद् की क्षमता के अन्तर्गत है। जब हम अधिनियम पर विस्तार से विचार प्रारम्भ करेंगे तब इस प्रश्न पर सम्यक् अनुक्रम में विचार करेंगे।[6] किन्तु अपने निष्कर्ष का पूर्वानुमान करके हम यहां यह कह सकते हैं कि हमारे विचार में संसद् उन विषयों के बारे में जिनकी चर्चा इस समय 1920 के अधिनियम में की गई है और ऐसे विषयों के बारे में भी जिनके लिए विधि में वृद्धि करने का प्रस्ताव हम इस रिपोर्ट में कर रहे हैं, विधान बनाने के लिए सक्षम है।

---

1. परिशिष्ट 3
2. ऊपर का पैरा 1.8
3. परिशिष्ट 3
4. आगे पैरा 3.13
5. आगे पैरा 3.13
6. आगे पैरा 4.3 से 4.8 तक के पैरे

अध्याय 2

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अंगुलि-चिह्न।

2.1. यह अधिनियम जिस रूप में अधिनियमित किया गया है उसके अनुसार इसमें तीन प्रकार के साक्ष्य को महत्व दिया गया है—अंगुलि-चिह्न[1], नाप और फोटोग्राफ। इन तीनों में से ऐतिहासिक दृष्टि से अंगुलि-चिह्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह तो भली-भांति विदित है कि अंगुलि-चिह्न के विज्ञान का उद्भाव भारत में हुआ था। इंडियन सिविल सर्विस के सर विलियम हरशेल और सर फ्रैन्सिसगल्टन ही वे वैज्ञानिक थे जिन्होंने इसे क्रमबद्ध करके सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। अब सारे संसार में अपराध के अन्वेषण के लिए अंगुलि-चिह्न के उपयोग का सामान्य तरीका अपनाया जाता है। इसके बारे में निम्नलिखित कथन किया गया है :—

> "यद्यपि यह कहा जाता है कि प्राचीन काल में मिस्र के देशवासियों को शनाख्त के लिए अंगुलि-चिह्न का उपयोग ज्ञात था किन्तु ऐंग्लो सेक्सन विधिशास्त्र में इसे उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल तक स्थान नहीं मिल सका था। शनाख्त के लिए बर्टिलान पद्धति उसके बहुत समय बाद की है जिसके अन्तर्गत उसमें फोटोग्राफ, अंगुलि-चिह्न और शरीर के नाप का उल्लेख है। दाण्डिक विधि में इस पद्धति का उपयोग दो मुख्य प्रयोजनों के लिए किया जाता है। पहला प्रयोजन है अभियुक्त व्यक्ति की शनाख्त ऐसे व्यक्ति के रूप में करना कि वह वही व्यक्ति है जिसने वह अपराध किया है जिसका आरोप उस पर लगाया गया है और दूसरा प्रयोजन है "अभियुक्त व्यक्ति की शनाख्त उस व्यक्ति के रूप में करना जिस पर अन्य अपराधों के करने का आरोप लगाया गया है या जो अन्य अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है। इस दूसरे प्रयोजन के लिए इस देश (संयुक्त राज्य अमरीका) के अधिकांश शहरों की और योरोप की पुलिस अपने द्वारा गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति का विवरण स्थायी अभिलेखों में रखने का प्रयास करती है। इन अभिलेखों को प्रचलित भाषा में "रोग्स गैलरीज" (लम्पटों के विवरण की दीर्घा) कहा जाता है।"[2]

आस्ट्रेलिया में मामला।

2.2. आस्ट्रेलिया का एक प्रमुख मामला[3] इस बात का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि अंगुलि-चिह्नों का कितना अधिक महत्व है। अपीलार्थी को गृहभेदन के लिए दोषसिद्ध किया गया था। अपीलार्थी के विरुद्ध एकमात्र साक्ष्य एक बोतल पर (जो गृहभेदन के समय दुकान में थी) उन अनेक अंगुलि-चिह्नों में से एक अंगुलि-चिह्न का मिलान उस अंगुलि-चिह्न से करने पर निर्भर करता था जो जेल में अपीलार्थी के बाएं हाथ की मध्यमा (बीच की अंगुली) का लिया गया था। उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील करने की इजाजत नामंजूर करते हुए निम्नलिखित विचार प्रकट किया था :—

> "हस्ताक्षरों का प्रयोग जब से किया जाने लगा है तब से उन्हें शनाख्त के साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह तथ्य कि प्रत्येक व्यक्ति के हाथ की अंगुलियों के चमड़े की रेखाएं इतनी अलग-अलग होती हैं कि उनसे हर व्यक्ति की शनाख्त की जा सकती है अब इतना सर्वमान्य है कि इसके लिए किसी और साक्ष्य की आवश्यकता नहीं रह जाती, यद्यपि इसके लिए अभी भी विशेषज्ञ का साक्ष्य पेश करने की परिपाटी विद्यमान है। अतः अंगुलि-चिह्न वास्तव में ऐसा हस्ताक्षर है जिसकी जालसाजी नहीं की जा सकती। अब इसे संसार के अधिकांश भाग में मान्यता प्राप्त है और कुछ भागों में तो इसे शताब्दियों से मान्यता मिली हुई है।"

उद्देश्यों और कारणों का कथन।

2.3. हम उस विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन को यहां उद्धृत करना चाहते हैं जिसे 1920 का अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के उद्देश्यों के कथन में अधिनियम के कारण इस प्रकार दिए गए हैं[4] :—

---

1. "नाप" की परिभाषा देखिए।
2. एनोटेशन, राइट टु टेक फिंगर प्रिन्ट्स एंड फोटोग्राफ्स आफ दि एक्यूज्ड (1933) 83 ए० एल० आर० 127.
3. आर बनाम पार्कर, (1912) 14 सी० एल० आर० 680 (आस्ट्रेलिया)।
4. भारत का राजपत्र (1920) भाग 5, पृष्ठ 162.

उद्‌देश्यों और कारणों का कथन

"इस विधेयक का उद्देश्य कुछ अपराधों के सम्बन्ध में दोषसिद्ध या गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों की नाप, उनके अंगुलि-चिह्नों, पद-छापों और फोटोग्राफों को लेने के लिए विधिक प्राधिकार का उपबन्ध करना है। अपराधों का पता लगाने और अपराधियों की शनाख्त करने में अंगुलि-चिह्नों और फोटोग्राफों के वैज्ञानिक उपयोग का महत्व भली-भांति विदित है और इंगलैण्ड में तथा अन्य योरोपीय देशों में जो आधुनिक विकास हुए हैं उनसे प्रस्तावित विधान की आवश्यकता को और बढ़ा-चढ़ा कर बताना अनावश्यक है।"

"इस समय भारत में पुलिस द्वारा अपराधियों और संदिग्ध अपराधियों के अंगुलि-चिह्नों तथा फोटोग्राफों आदि के लेने की विद्यमान पद्धति के लिए कोई विधिक मंजूरी नहीं है, सिवाय अपराधी जीवी (जरायनपेशे वाली) जनजातियों के रजिस्ट्रीकृत ऐसे सदस्यों के बारे में, जिनके अंगुलि-चिह्न लेने के लिए अपराधजीवी जनजाति अधिनियम, 1911 (1911 का 3)[1] की धारा 9 में उपबन्ध विद्यमान है। इस पद्धति को वैध बनाने की आवश्यकता बहुत पहले ही स्वीकार कर ली गई थी किन्तु जब तक कोई व्यावहारिक कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है तब तक इस प्रश्न को उठाना समीचीन नहीं समझा गया। अभी हाल में ही भारत सरकार को ऐसी घटनाओं की रिपोर्ट मिली है जिनमें वन्दियों ने अपना अंगुलि-चिह्न या फोटो लिए जाने से इन्कार किया है। भविष्य में ऐसे इन्कार को रोकने के लिए यह आवश्यक समझा गया है कि अविलम्ब ऐसे उपाय किए जाएं जिनसे नाप आदि लेने की पद्धति नियमित आधार पर लागू की जाए जो अन्य देशों की भांति भारत में पुलिस द्वारा किया जाने वाला एक सामान्य कार्य है। किसी भी व्यक्ति का नाम आदि, जब तक कि वह गिरफ्तार न कर लिया गया हो, जबरदस्ती नहीं लिया जाएगा।"

2.4. हमें धारा 5 से विशिष्ट रूप में सुसंगत कुछ बातों के इतिहास की विस्तार से चर्चा करने का अवसर इस रिपोर्ट में आगे मिलेगा।[2] धारा 5 का इतिहास।

1. अपराधजीवी जनजाति अधिनियम, 1911
2. आगे पैरा 5.21 और पैरा 5.22

अध्याय 3

अधिनियम का महत्व : इसकी साधारण स्कीम और सदृश विधियां

I. महत्व

महत्व ।

3.1. यहां पर भारतीय विधि पद्धति के साधारण संदर्भ में 1920 के अधिनियम के उपबन्धों के महत्व के बारे में कुछ बता देना समुचित होगा ।

प्रपीड़न के तरीकों का उद्देश्य और उसका दाण्डिक प्रक्रिया से सम्बन्ध ।

3.2. 1920 के अधिनियम का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित व्यक्तियों की "शनाख्त" सुगम करने की दृष्टि से प्रपीड़न के कुछ तरीके अपनाने की अनुज्ञा देना है :—

(1) अभियुक्त व्यक्ति,

(2) कुछ अपराधों के सम्बन्ध में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति, और

(3) कुछ मामलों में प्रतिभूति देने के लिए आदिष्ट किए गए व्यक्ति ।

प्रपीड़न के उपाय अपनाने के लिए इस अधिनियम द्वारा मंजूरी दी गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनका उद्देश्य अपराधियों या संदिग्ध अपराधियों की शनाख्त को सुगम बनाना है। ये उपाय स्वतः "दाण्डिक प्रक्रिया" के विषय से सम्बद्ध हैं—इस पहलू पर हम बाद में विचार करेंगे ।[1]

अपराधी विवरण विज्ञान और शारीरिक साक्ष्य ।

3.3. अपराध विज्ञान के आधुनिक लेखक अपराध के अन्वेषण में वैज्ञानिक तकनीक का उपयोग प्रकट करने के लिए "अपराधी विवरण विज्ञान" (क्रिमिनिलिस्टिक्स) शब्द का प्रयोग करते हैं ।[2-3] यह एक अनुप्रयुक्त विज्ञान है जिसमें विधि के प्रवर्तन के प्रयोजनों के लिए प्राकृतिक विज्ञान के सिद्धान्तों को लागू किया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में इस "अपराधी विवरण विज्ञान" (क्रिमिनिलिस्टिक्स) की परिभाषा यह की गई है कि यह पुलिस कार्य का वह पहलू है जिसमें अपराधी का शारीरिक साक्ष्य एकत्र किया जाता है और उसके सम्बन्ध में प्रक्रियाएं की जाती हैं ।[4-5]

इस अधिनियम का अपकृत्य विधि से सम्बन्ध ।

3.4. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से ऐसा बहुत सा साक्ष्य यह अपेक्षा किए बिना प्राप्त किया जा सकता है कि वह अपने शरीर को प्रदर्शित करे या अन्यथा शारीरिक रूप से भाग ले। किन्तु कुछ विशेष प्रकार के साक्ष्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब वह अपने शरीर का सक्रिय रूप से उपयोग करे और इस अधिनियम में इस बात के लिए कानूनी प्राधिकार का उपबन्ध किया गया है जिसके आधार पर अभियुक्त व्यक्ति से ऐसा करने की अपेक्षा की जा सकती है। इस अर्थ में अपकृत्य विधि के क्षेत्र में इस अधिनियम का बहुत महत्व है क्योंकि विधि द्वारा मान्यताप्राप्त नियम विधिपूर्ण प्रधिकार के बिना किसी प्रकार शारीरिक हस्तक्षेप के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करते हैं।

इस अधिनियम का साक्ष्य विधि से सम्बन्ध ।

3.5. इस अधिनियम का उद्देश्य साक्ष्य उपाप्त करना है अतः यह स्पष्ट ही है कि इसका साक्ष्य विधि पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है। किन्तु जो साक्ष्य उपाप्त किया जाता है वह विशेष प्रकार का साक्ष्य होता है क्योंकि वह सामान्य प्रकार के मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य से कुछ भिन्न होता है। इस अधिनियम द्वारा प्रपीड़न के जिन उपायों के लिये मंजूरी दी गई है उनके द्वारा साक्ष्य की जो सामग्री उपाप्त करने की चेष्टा की जाती है वह वास्तव में प्रदर्शनात्मक साक्ष्य के रूप में होती है ।[6]

---

1. आगे पैरा 3.3
2. ग्रासबरगर, यूनिवर्सिटी टीचिंग आफ सोशल साइन्सेज (यूनेस्को) (1957) पृष्ठ 62 से तुलना कीजिए।
3. सदरलैंड एण्ड क्रेसे क्रिमिनालाजी (1968) पृष्ठ 348, 349 भी देखिए जिसमें ओहेरा एण्ड ओस्टरलिंग, इन्ट्रोडक्शन टु क्रिमिनिलिस्टिक्स के प्रति भी निर्देश है।
4. बेनेट सैन्डरल, ला इन्फोर्समेन्ट एण्ड क्रिमिनल जस्टिस (1979), पृष्ठ 127.
5. "फिजिकल एविडेन्स (शारीरिक साक्ष्य)" शब्द के बारे में (1964) 80 एल० क्यू० आर० 18 में टिप्पण देखिए।
6. आगे पैरा 3.9 देखिए।

3.6. समस्त साक्ष्य का उद्देश्य उन घटनाओं को पुनः सृजित करना होता है जिनसे विचारणाधीन विवाद उत्पन्न हुआ है। इसका उद्देश्य पीठासीन अधिकारी के पांचों इन्द्रियों को आकृष्ट करना है जिससे कि वह इन इन्द्रियों से जो कुछ भी अनुभव करे उसके अनुसार (विवादग्रस्त तथ्यों के बारे में) अपना निष्कर्ष निकाल सके। वर्तमान पद्धति में विभिन्न प्रकार के साक्ष्यों के माध्यम से इस उद्देश्य को प्राप्ति करने की चेष्टा की जाती है। साक्ष्य का उद्देश्य।

3.7. दाण्डिक विचारण में अन्तिम और अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि :— आपराधिक मामले में महत्वपूर्ण प्रश्न।

क्या अभियुक्त व्यक्ति और वह व्यक्ति जिसके बारे में यह कहा गया है कि उसने अपराध किया है एक ही और वही व्यक्ति है? इस प्रश्न का उत्तर बहुधा सामान्य रूप से दो तरीके से दिया जाता है।[1]

(क) अपराध से सम्बन्धित शारीरिक साक्ष्य और अभियुक्त की वैयक्तिक विशिष्टताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव है (जैसे कि रक्त समूह, अंगुलि-चिह्न आदि)।

(ख) अपराध की घटनास्थिति और अभियुक्त के बारे में कुछ अन्य निश्चित बातों के बीच सम्बन्ध दर्शित करना सम्भव है, जसे कि अभियुक्त द्वारा पहने हुए कपड़े के धागे या अपराध के घटनास्थल पर पाए गए पहनावे के कपड़े पर विशेष प्रकार का चिह्न और उसका अभियुक्त के व्यवसाय से सम्बन्ध। किसी व्यवसाय के अनुक्रम में किया गया काम ऐसे विशेष प्रकार का हो सकता है जिससे कि पहने हुए कपड़े पर विशेष प्रकार के कुछ चिह्न लग सकते हैं।

3.8. इसमें कोई संदेह नहीं कि शारीरिक साक्ष्य[2] अनेक प्रकार के होते हैं। इनके अन्तर्गत रक्त, बाल, गोला-बारूद, आग्नेय-अस्त्र, मिट्टी, आदमी की आवाज और अंगुलि चिह्न भी हैं। शारीरिक साक्ष्य और वैयक्तिक विशिष्टताएं।

अपराधियों की शनाख्त जिन वैयक्तिक विशिष्टताओं के जरिये की जाती है वे मोटे तौर पर निम्नलिखित होती हैं[3]:—

(1) रक्त समूह,

(2) बालों का रंग,

(3) आवाज,

(4) साधारण सूरत,

(5) दांतों और हड्डियों का ढंग, आकार और विन्यास, तथा

(6) अंगुलि-चिह्न

II. प्रदर्शनात्मक साक्ष्य

3.9. ऐसे साक्ष्य वास्तविक या प्रदर्शनात्मक साक्ष्य के प्रवर्ग के अन्तर्गत आते हैं। वास्तविक या प्रदर्शनात्मक[4] साक्ष्य ऐसी "वस्तुएं" होती हैं जिन्हें प्रदर्श के रूप में पेश किया जाता है और जिन्हें परिसाक्ष्य द्वारा स्पष्ट किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में मौखिक परिसाक्ष्य प्रदर्श या वस्तु से गौण होता है। दाण्डिक विचारण में प्रदर्शनात्मक साक्ष्य प्रायः सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। मानव शरीर, चित्र, नक्शे, चार्ट, रेखांकन, माडेल और हस्तलेख के उदाहरण ये सब प्रदर्शनात्मक साक्ष्य के उदाहरण हैं जो साक्ष्य के ग्राह्य और सुसंगत होने की शर्तों को पूरा करते हैं। प्रदर्शनात्मक साक्ष्य के महत्वपूर्ण उदाहरण ये हो सकते हैं—अपराध की घटना के समय चुराई गई सम्पत्ति पर या दरवाजों या फर्नीचर पर अभियुक्त के अंगुलि-चिह्न। इसमें नाप का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तविक या प्रदर्शनात्मक साक्ष्य।

1. एच० जे० वाट्स, फरेन्सिक मैडिसिन (1968) पृष्ठ 9.
2. ऊपर पैरा 2.3
3. एच० जे० वाट्स, फरेंसिक मैडिसिन (1968) पृष्ठ 106.
4. "प्रदर्शनात्मक" शब्द के लिए डी० जे० जार्ज का "कन्सीच्यूशनल लिमिटेशन्स इन क्रिमिनल केसेज" (1969) पृष्ठ 195-205 देखिए।

एक सुविज्ञ लेखक[1] ने शनाख्त करने के विभिन्न तरीकों का वर्णन विस्तार से किया है :—

(क) अंगुलि-चिह्न, पद-छाप और जूतों के निशान

(ख) कान

(ग) हड्डियाँ और दांत

(घ) खोपड़ी

(ङ) तरल पदार्थ और बाल (बाह्य)

(च) तरल पदार्थ (आन्तरिक)

(छ) धागे

(ज) हस्तलेख

(झ) वाणी अभिलेखन (वायसप्रिन्ट) (स्पेक्ट्रोग्राफ)

III. शनाख्त के उद्देश्य

शनाख्त के उद्देश्य।

3.10. अब हम शनाख्त के उद्देश्यों की चर्चा संक्षेप में करेंगे। शनाख्त के प्रयोजनों के लिये नाप और फोटोग्राफ लेने तथा उस प्रयोजन के लिये अन्य साक्ष्य उपाप्त करने से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है।

(क) पहला यह है कि यदि किसी विशेष व्यक्ति के बारे में अंगुलि-चिह्न या शनाख्त करने की अन्य सामग्री ले ली गई है या वह एकत्र कर ली गई है तो शनाख्त किया जाना उस समय आसान हो जाता है जब अपराध के बार-बार किये जाने का या एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही तरह के अपराध किये जाने का संदेह हो क्योंकि तब यह जांच करना सम्भव है कि जिस व्यक्ति के बारे में शनाख्त की सामग्री का अभिलेख रखा गया है क्या वह वही व्यक्ति है जिसने अब दुबारा अपराध किया है।

इन प्रयोजनों के लिये इस अधिनियम की धारा 3 विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि इस धारा में दोषसिद्ध किये गये व्यक्तियों के या जिन व्यक्तियों को सद्व्यवहार के लिये प्रतिभूति देने के लिये आदेश दिया गया है उनके नाप आदि लेने की चर्चा की गई है। यह धारा भविष्य के बारे में है।

इस प्रकार लिये गये नाप उन मामलों में उपयोगी हो सकते हैं जिनमें (शनाख्त के वास्ते लिये जाने वाले नाप या साक्ष्य के समय) यह संदेह रहता है कि जिस व्यक्ति को नाप या साक्ष्य आदि देने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है वह पहले भी दोषसिद्ध किया जा चुका है। [2]यह धारा पिछले वृत्तान्त के बारे में है।

(ख) दूसरा यह है कि किसी अभिकथित अपराध की जांच करने के प्रयोजन के लिये शनाख्त करना इस दृष्टि से आवश्यक हो सकता है कि गिरफ्तार किये गये व्यक्ति की वास्तविक अपराधी से प्रदर्शनात्मक साक्ष्य के आधार पर अनन्यता सिद्ध की जा सकती है अर्थात् यह सिद्ध किया जा सकता है कि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति वही व्यक्ति है जिसने वास्तव में अपराध किया है। अन्ततः, इस प्रकार एकत्र की गई सामग्री मुख्य रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के अधीन साक्ष्य के रूप में पेश की जाएगी। 1920 के अधिनियम की धारा 4 और धारा 5 का इस पहलू से मुख्य रूप में सम्बन्ध है। कुछ हद तक धारा 7 का भी शनाख्त से सम्बन्ध है।

(ग) तीसरा यह है कि, पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध करने के लिये शनाख्त उपयोगी हो सकती है. अर्थात् गिरफ्तार किये गये व्यक्ति का पूर्व दोषसिद्ध किये गये व्यक्ति से अनन्यता स्थापित करने के लिये शनाख्त का उपयोग किया जा सकता है। धारा 3 इस संदर्भ में उपयोगी होगी।[3] ऐसी पूर्व दोषसिद्धि अधिक दण्ड अधिरोपित करने के लिये अथवा (कुछ मामलों में) सुसंगत तथ्य या विवाद्यक तथ्य के रूप में स्वतः साक्ष्य में ग्राह्य हो सकता है।

---

1. एच० एल० बामी, 'पर्सनल आइडेन्टिफिकेशन रिसेन्ट ट्रैन्ड्स एण्ड टैक्नीक" (जुलाई, 1970), इंडियन पुलिस जर्नल पृष्ठ 16-22.
2. आगे पैरा 3.10 (ग) देखिए।
3. ऊपर पैरा 3.10 (क) देखिए।

(घ) अन्तिम यह है कि आंकड़ों के प्रयोजन के लिये शनाख्त उपयोगी हो सकती है—उदाहरण के लिये दोषसिद्ध किये गये व्यक्ति के नापों को इस दृष्टि से एकत्र और उनका विश्लेषण किया जा सकता है कि अपराधियों के बारे में यदि कोई नृशास्त्रीय सिद्धान्त पेश किया गया है तो उसकी पुष्टि की जाए या उसे अस्वीकार किया जाए। इस पहलू से 1920 के अधिनियम का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इस अधिनियम के अधीन लिये गए नाप और ली गई अन्य सामग्री का उपयोग ऐसे प्रयोजनों के लिये यदि आवश्यक है तो किया जा सकता है।

IV. अधिनियम की स्कीम

3.11. अब हमें यह देखना चाहिये कि यह अधिनियम इन उद्देश्यों की पूर्ति किस तरह से करता है। इस अधिनियम की स्कीम संक्षेप में इस प्रकार है। पहली दो धाराओं में प्रारम्भिक विषयों—(अधिनियम का संक्षिप्त नाम, उसका विस्तार और परिभाषाओं) की चर्चा है। विभिन्न प्रकार के जो प्रदर्शनात्मक साक्ष्य उपाप्त किये जा सकते हैं वे तीन प्रवर्तनशील उपबन्धों—(धाराएं 3, 4 और 5) की विषय वस्तु हैं और ये धाराएं, विनिर्दिष्ट प्राधिकारियों को ऐसा साक्ष्य लेने की शक्ति प्रदान करती हैं। अधिनियम की स्कीम।

3.12. यहां यह अधिनियम साक्ष्य को दो भागों में विभाजित करता है (i) ऐसी स्थिति जिसमें ऐसा साक्ष्य लेने की शक्ति (विहित पंक्ति के) पुलिस अधिकारी को दी गई है, (ii) ऐसी स्थिति जिसमें ऐसा साक्ष्य लेने के लिये मजिस्ट्रेट के आदेश की पूर्वापेक्षा करना आवश्यक समझा जाता है। इन दोनों स्थितियों में जो अन्तर किया गया है वह विधि के उस दृष्टिकोण पर स्पष्टतया आधारित है जिसके अनुसार व्यक्ति की उस स्वतंत्रता को, जो उसे गिरफ्तारी की दशा में भी प्राप्त है कायम रखने की चेष्टा की जाती है। द्विभाजन।

3.13. इस अधिनियम के प्रवर्तनशील उपबन्ध निम्नलिखित हैं:— उपबन्धों का विश्लेषण।

धारा 3—दोषसिद्ध किये गये व्यक्ति की नाप आदि लेना।

धारा 4—दोषसिद्ध न किये गये ऐसे व्यक्तियों की नाप आदि लेना जिन्हें एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के कठोर कारावास से दण्डनीय अपराध के लिये गिरफ्तार किया गया है।

धारा 5—किसी व्यक्ति की नाप या फोटोग्राफ लेने के लिये आदेश देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति।

निम्नलिखित धाराओं में आनुषंगिक या पारिणामिक विषयों की चर्चा है:—

धारा 6—नाप आदि लिये जाने का प्रतिरोध।

धारा 7—दोषमुक्त होने पर फोटोग्राफ और नाप के अभिलेखों का नष्ट किया जाना।

धारा 8—नियम बनाने की शक्ति।

धारा 9—वादों का वर्जन।

3.14. यह ध्यान देने की बात है कि इस अधिनियम में इस सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है कि अपराध जितना ही कम गम्भीर हो प्रपीड़न के उपाय करने की शक्ति पर उतना ही अधिक निर्बन्धन लगाना चाहिये। इसी प्रकार से जितना ही अधिक गम्भीर अपराध हो प्रपीड़न के उपाय करने की उतनी ही अधिक शक्ति अधिनियम द्वारा प्रदान की गई है। अतः धारा 3 (जो मुख्यतया गम्भीर प्रकृति के अपराधों के सम्बन्ध में ही है) में पुलिस अधिकारी को विनिर्दिष्ट शक्ति प्रदान की गई है और इसके विपरीत धारा 5 (जिसका विस्तार अधिक व्यापक है) में यह अपेक्षा की गई है कि इस धारा के अधीन प्रपीड़न के उपाय अपनाने के पूर्व मजिस्ट्रेट के आदेश प्राप्त करना आवश्यक है। धारा 5 ऐसी कार्रवाई को लागू होती है जो "दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन किसी अन्वेषण या कार्यवाही के प्रयोजनों के लिये" की जाने वाली हो (परन्तु ऐसा तब जब कि वह व्यक्ति पहले गिरफ्तार किया जा चुका हो) और इस प्रकार धारा 5 का विस्तार धारा 3 की अपेक्षा अधिक व्यापक है। अधिनियम में अन्तर्निहित सिद्धान्त।

V. विस्तार

अधिनियम सर्वांगपूर्ण नहीं है—शनाख्त के अन्य तकनीक।

3.15. इसमें कोई सन्देह नहीं कि 1920 के अधिनियम में सभी प्रकार के कल्पनीय साक्ष्यों की ऐसी चर्चा नहीं की गई कि कोई साक्ष्य बचा ही न हो जिसे शनाख्त सुगम करने की दृष्टि से एकत्र किया जा सकता हो। अधिनियम में जिन विषयों को सम्मिलित किया गया है उनके अतिरिक्त ऐसे अनेक प्रकार के तकनीक हैं जिनका विकास अपराध का पता लगाने के अध्ययन के लिये किया गया है। उन सभी का पूरा विवरण देना कठिन होगा। ऐसा करना अनावश्यक भी है क्योंकि हम इस अधिनियम में इस विषय के बारे में कोई ऐसा सर्वग्राही उपबन्ध या ऐसी सर्वव्यापी धारा अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव नहीं कर रहे हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं[1] ऐसे प्रस्तावों को तैयार करने में यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सामाजिक आवश्यकताओं और वैयक्तिक गोपनीयता के बीच विधि द्वारा सन्तुलन बनाए रखने का प्रयास अवश्य किया जाए। यदि सर्वव्यापी और विस्तृत उपबन्ध बना दिया जाता है तो आशय न होने पर भी उसका ऐसा प्रभाव पड़ सकता है कि ऐसी बहुत सी पद्धतियों के लिये प्राधिकार दे दिया जाए जो वांछनीय न हो।

शारीरिक साक्ष्य का एक उदाहरण अवाज-प्रिन्ट का अधिनियम में उल्लेख न होना।

3.16. पुलिस को अभियुक्त व्यक्ति की आवाज सुनने का अवसर देने के प्रयोजन के लिये और उसकी अपराधी व्यक्ति के रूप में उसकी शनाख्त करने की कोशिश के लिये बहुधा यह वांछनीय हो जाता है कि अभियुक्त से बोलने के लिये कहा जाए। अभियुक्त व्यक्ति की आवाज की तुलना किसी अपराधी की रिकार्ड की गई आवाज से, जो टेलीफोन टेप करके की गई हो करना भी वांछनीय हो सकता है। अपराध के सबूत की सुगमता के लिये पुलिस अभियुक्त व्यक्ति को बोलने के लिये बाध्य करना चाह सकती है और उसकी आवाज जिस रूप में रेकार्ड की गई है उसको "आवाज-प्रिन्ट" के रूप में संपरिवर्तित करना भी चाह सकती है।[2-3]

आवाज की तुलना करने के प्रयोजनों के लिये अभियुक्त को बाध्य करके उसके द्वारा बोलवाए गये शब्दों को उस अर्थ में बाध्य करके लिया गया परिसाक्ष्य नहीं माना जा सकता जिस अर्थ में अभियुक्त को यह संवैधानिक विशेषाधिकार प्राप्त है कि स्वयं को फंसाने वाला कथन करने के लिये उसे बाध्य नहीं किया जा सकता, किन्तु उसे ऐसा तभी तक नहीं माना जा सकता जब तक कि वे बातें, जिन्हें बोलने के लिये अभियुक्त को बाध्य किया गया है, अपराध से असंगत हैं।[4]

वास्तव में ऐसे शब्द शारीरिक प्रकृति के साक्ष्य हैं। अभियुक्त ऐसे शब्दों को बोल करके केवल "शनाख्त के आंकड़े" देता है और उसे "परिसाक्ष्य देने के लिये बाध्य" नहीं किया जाता है।

किन्तु यदि अभियुक्त ऐसी आवाज निकालने से इन्कार करता है तो उसे ऐसा करने के लिये बाध्य करने की कोई विधिक मंजूरी नहीं है और इस प्रयोजन के लिये बल का प्रयोग करना अवैध होगा।

शनाख्त की सामग्री के प्रवर्गों का समाप्त न होना।

3.17. यह स्पष्ट है कि शनाख्त के प्रयोजनों के लिये एकत्र किये जाने वाले आंकड़ों के प्रवर्ग को समाप्त नहीं किया जा सकता है। किसी निश्चित समय पर जितने प्रकार के साक्ष्य साधारणतया उपलब्ध हो सकते हैं उन सब को उस समय पर प्रगणित किया जा सकता है। किन्तु प्रगतिशील वैज्ञानिक ज्ञान में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे साक्ष्य की भी सूची में भी वृद्धि होती रहनी चाहिये। सच तो यह है कि इसका कोई अंत नहीं है कि न जाने कितने प्रकार के ऐसे प्रदर्शनात्मक साक्ष्य विद्यमान हों और वे अपराध के अन्वेषण में उपयोगी सिद्ध हों। जूतों के निशान को भी शनाख्त के लिये उपयोगी माना गया है।[5]

अधिनियम के विभिन्न पहलू।

3.18. इस अधिनियम के महत्व और शनाख्त के विभिन्न पहलुओं पर इस विस्तृत विचार-विमर्श से यह प्रकट हो जाएगा कि इस अधिनियम का न केवल साक्ष्य के क्षेत्र में बल्कि दण्ड प्रक्रिया के क्षेत्र में तथा आपराधिक आकड़ों और दण्डशास्त्र के क्षेत्र में भी, जिसे प्रायः ठीक तरह से नहीं समझा जाता है, कितना अधिक महत्व है।

---

1. ऊपर पैरा 1.7 देखिए।
2. आर० बनाम कीटिंग, (1909) 2 क्रिमि० अपील रिपार्ट्स 61.1
3. टामस मैक्काडाले, "दि वायस-प्रिन्ट" (जुलाई, 1970), इंडियन पुलिस जर्नल, पृष्ठ 26-34।
4. इनबाऊ, "सेल्फ-इन्क्रिमिनेशन" (1950), पृष्ठ 51 से तुलना कीजिए जिसके प्रति मोरलेंड ने "क्रिमिनल प्रोसीड्योर" (1959) में निर्देश किया गया है।
5. एच० एस० लोंगिया, "शू प्रिन्ट्स आइडेन्टिफिकेशन" खण्ड 18 ए इंडियन पुलिस जर्नल, पृष्ठ 14 से 19 तक।

VI. सदृश उपबन्ध

3.19. विधिक कार्यवाहियों में हस्ताक्षर लेने के लिये कानूनी प्राधिकार का उपबन्ध 1920 के अधिनियम में ही नहीं किया गया है बल्कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 73 में भी इसके सदृश एक उपबन्ध है। यह धारा न्यायालय को ऐसे व्यक्ति से, जो न्यायालय में उपस्थित है, उसके हस्ताक्षर के नमूने या अंगुलि-चिह्न लेने के लिये सशक्त करती है। साक्ष्य अधिनियम में सदृश उपबन्ध।

3.20. विधि आयोग ने साक्ष्य अधिनियम से संबंधित अपनी रिपोर्ट में धारा 73 पर विस्तारपूर्वक विचार किया था।[1-2] आयोग ने इस प्रश्न पर कि क्या धारा 73 अन्वेषण के प्रक्रम में लागू की जा सकती है विभिन्न विनिश्चयों में मतभेद होने के बारे में विस्तार से विचार-विमर्श किया था। आयोग ने इस बात पर ध्यान दिया था कि साक्ष्य अधिनियम केवल "न्यायिक कार्यवाहियों" के बारे में लागू होता है और यह विचार प्रकट किया था कि न्यायिक कार्यवाही से पूर्वतर प्रक्रम में प्रयोक्तव्य शक्ति के लिये अधिनियम की किसी धारा में उपबन्ध करना अधिनियम की साधारण स्कीम के असंगत बात होगी। विधि आयोग ने यह सिफारिश की थी कि इस बात को स्पष्ट कर देना चाहिये कि धारा 73 के अधीन शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा किसी विषय का संज्ञान कर लिये जाने के पश्चात् किया जा सकता है, पहले नहीं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के बारे में पूर्वतर सिफारिश।

विधि आयोग ने धारा 73 का निम्नलिखित रूप में पुनःप्रारूपण करने की सिफारिश की थी :—

"73 (1) यह अभिनिश्चित करने के लिये क्या कोई हस्ताक्षर, लेख या मुद्रा उस व्यक्ति की है, जिसके द्वारा उसका लिखा या किया जाना अभिकथित है, किसी हस्ताक्षर, लेख या मुद्रा की, जिसके बारे में यह स्वीकृति है या न्यायालय को समाधानप्रद रूप में साबित कर दिया गया है कि वह उस व्यक्ति द्वारा लिखा या किया गया था, उससे जिसे साबित किया जाता है तुलना न्यायालय के आदेश द्वारा या के अधीन की जा सकेगी, यद्यपि वह हस्ताक्षर, लेख या मुद्रा किसी अन्य प्रयोजन के लिये पेश या साबित न की गई हो।

(2) न्यायालय में उपस्थित किसी व्यक्ति को किन्हीं शब्दों या अंकों को लिखने का निदेश न्यायालय इस प्रयोजन से दे सकेगा कि ऐसे लिखे गए शब्दों या अंकों की किन्हीं ऐसे शब्दों या अंकों से तुलना करने के लिये न्यायालय समर्थ हो सके जिनके बारे में अभिकथित है कि वे उस व्यक्ति द्वारा लिखे गये थे।

(3) यह धारा किन्हीं आवश्यक उपान्तरों के साथ अंगुलि-छापों, हथेली-छापों, पद-छापों और टाइप-राइटिंग को भी लागू है।

स्पष्टीकरण—इस धारा की कोई बात दाण्डिक न्यायालय को उसके द्वारा किसी अपराध का संज्ञान किये जाने के पूर्व लागू नहीं होती है।"

3.21. साक्ष्य अधिनियम के अतिरिक्त विदेशियों विषयक अधिनियम[3] केन्द्रीय सरकार को नियम बनाने के लिये सशक्त करता है जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ किसी विदेशी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपना फोटोग्राफ और अंगुलि-चिह्न लेने दे और विहित प्राधिकारी को विहित समय तथा स्थान पर अपने हस्तलेख और हस्ताक्षर के नमूने पेश करे। विदेशियों विषयक अधिनियम।

3.22. इस अधिनियम की स्कीम की और सदृश उपबन्धों तथा विगत समय में की गई सिफारिशों का संक्षिप्त सर्वेक्षण करने के पश्चात् अब हम 1920 के अधिनियम की धारावार जांच करेंगे। धारावार जांच।

---

1. भारत का विधि आयोग, उन्हत्तरवीं रिपोर्ट (भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872), (मई, 1977) पृष्ठ 445 से 453 तक, अध्याय 33।
2. भारत का विधि आयोग, उन्हत्तरवीं रिपोर्ट (भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872), (मई, 1977) पृष्ठ 452-453 पैरा 33.40।
3. विदेशियों विषयक अधिनियम, 1946 की धारा 3 (2) (iv) और 11 (2)।

अध्याय 4

प्रारम्भिक बातें : धारा 1 और धारा 2

धारा 1(1) अधिनियम के संक्षिप्त नाम की समीक्षा ।

4.1. हम धारा 1 (1) के बारे में, जो इस अधिनियम के संक्षिप्त नाम के सम्बन्ध में है, यह बताना चाहेंगे कि वर्तमान संक्षिप्त नाम दो कारणों से पूर्णतया ठीक नहीं है ।

पहला यह कि "बन्दी" शब्द का प्रयोग कुछ भ्रामक है । साधारण आदमी इस शब्द का अर्थ दोषसिद्ध किया गया व्यक्ति समझता है किन्तु यह अधिनियम केवल दोषसिद्ध किये गये व्यक्तियों को लागू नहीं है बल्कि ऐसे व्यक्तियों को भी लागू है जो विनिर्दिष्ट अपराध के लिये या विनिर्दिष्ट कारण से गिरफ्तार किये गये हैं ।

दूसरा, यह कि अधिनियम के नाम में प्रयुक्त "शनाख्त" शब्द बहुत अर्थ प्रकट करने वाला नहीं है । यह **शनाख्त की प्रक्रिया** पर अधिक जोर डालने वाला प्रतीत होता है और इससे मन पर यह प्रभाव पड़ता है कि इस अधिनियम का सम्बन्ध उस बात से है जिसे "शनाख्त परेड" के नाम से जाना जाता है । किन्तु इस अधिनियम का प्रविषय "शनाख्त परेड" के एकदम भिन्न है । इसका अधिक सम्बन्ध अपनाए जाने वाले उन तरीकों और एकत्र किये जाने वाले उस साक्ष्य से है जिनसे **बाद में** शनाख्त किया जाना उस प्रक्रिया से अधिक सुगम हो जिस प्रक्रिया द्वारा शनाख्त किया जाता है ।

इस दृष्टि से हमारी यह राय है कि संक्षिप्त नाम में सुधार किया जा सकता है । ऐसे नाम को सोचना कठिन है जो संक्षिप्त हो और उसके साथ अर्थ प्रकट करने वाला भी हो किन्तु हम यह सुझाव देते हैं कि इस अधिनियम का नाम "दण्ड प्रक्रिया (शारीरिक साक्ष्य) अधिनियम" या "आपराधिक अन्वेषण (शारीरिक साक्ष्य) अधिनियम" रखना अधिक उपयुक्त होगा ।

1920 के अधिनियम की धारा 1(2) ।

4.2. धारा 1 (2) में यह उपबन्ध है कि इस अधिनियम का विस्तार उन राज्य क्षेत्रों के सिवाय, जो 1 नवम्बर, 1956 से ठीक पूर्व भाग ख राज्यों में समाविष्ट थे, संपूर्ण भारत पर है । अतः अभी भारत के कुछ क्षेत्रों पर इस अधिनियम का विस्तार नहीं है । 1951 में अनेक केन्द्रीय अधिनियमों का विस्तार एक विनिर्दिष्ट केन्द्रीय अधिनियम[1] द्वारा उन क्षेत्रों पर किया गया था जो भाग ख राज्यों में समाविष्ट थे किन्तु विचाराधीन इस अधिनियम का इस प्रकार विस्तार नहीं किया गया था । हमने इस विषय पर थोड़ा विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि इस अधिनियम का विस्तार उन क्षेत्रों पर किया जाना चाहिये ।

क्षमता के बारे में वास्तविक स्थिति ।

4.3. हमारी राय में इस अधिनियम की विषयवस्तु के सम्बन्ध में संसद् की विधायी क्षमता के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि यह "दण्ड प्रक्रिया" के अन्तर्गत आता है ।[2] इसमें कोई सन्देह नहीं कि अधिनियम की धारा 3 का (जिसमें दोषसिद्ध किये गये व्यक्ति की नाप लेने की चर्चा है) सम्बन्ध कारागार में रखे गए व्यक्तियों से है और यह तर्क दिया जा सकता है कि इसका सम्बन्ध विधायी प्रविष्टि—"कारागार और बन्दियों" से है ।[3] किन्तु इस अधिनियम का काफी बड़ा भाग, विशेषकर धारा 4 और धारा 5 (और धारा 6 से धारा 9 तक का उतना भाग जितने में कि धारा 4 और धारा 5 से संबंधित विषयों के लिये उपबन्ध किया गया है) वास्तव में "दण्ड विधि" और "दण्ड प्रक्रिया" के सम्बन्ध में है जो समवर्ती सूची के अन्तर्गत आते हैं ।[4] यदि अपराध के अन्वेषण को "दण्ड प्रक्रिया" का भाग माना जाता है तो इस अधिनियम की इन धाराओं को निश्चय ही दण्ड प्रक्रिया का भाग मानना चाहिये ।

---

1. (क) भाग ख राज्य (विधि) अधिनियम, 1951 (सुसंगत फाइल सुगमता से उपलब्ध नहीं है) ।
   (ख) प्रक्रिया संबंधी संहिताओं का विस्तार करने वाला अधिनियम ।
2. समवर्ती सूची ।
3. राज्य सूची, प्रविष्टि 4 ।
4. समवर्ती सूची प्रविष्टियां 1 से 2 तक ।

4.4. जैसा कि हमने ऊपर[1] कहा है धारा 3 की विषय वस्तु भी "दण्ड प्रक्रिया" के विषय के अन्तर्गत प्रतीत होती है। इस धारा में वर्णित विभिन्न व्यक्तियों के अंगुलि-चिह्न मुख्यतया इस उद्देश्य से लिये जाते हैं कि अपराध के बार बार किये जाने का संदेह होने पर ऐसे व्यक्तियों की शनाख्त सुनिश्चित की जा सके या कुछ मामलों में यह जांच की जा सके कि क्या ऐसे व्यक्तियों ने पहले भी अपराध किया है। यदि ऐसा है तो यह अवश्य कहा जाएगा कि इस धारा में समुचित प्रक्रिया द्वारा दण्ड विधि के प्रवर्तन के आनुषंगिक विषय की चर्चा की गई है और यह धारा दण्ड प्रक्रिया से संबंधित है। धारा 3 का "दण्ड प्रक्रिया" के अन्तर्गत होना।

4.5. यह सच है कि इन विषयों को (अर्थात् अंगुलि-चिह्न आदि लिये जाने के विषय को) संविधान के प्रारम्भ के समय "दण्ड प्रक्रिया" संहिता के अन्तगत इस कारण सम्मिलित नहीं किया गया था कि "दण्ड प्रक्रिया" से सुसंगत संवैधानिक प्रविष्टि में जो शब्द विषयों को सम्मिलित करने के लिये प्रयुक्त हैं उनके आधार पर इन विषयों को सम्मिलित न किया जा सके किन्तु इससे यह निश्चित रूप में विवक्षित नहीं है कि ये विषय "दण्ड प्रक्रिया" के अन्तर्गत नहीं है। यदि दण्ड प्रक्रिया की विचारधारा को ठीक तरह से समझा जाए तो उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता में नाप आदि लेने का उल्लेख विनिर्दिष्ट रूप से नहीं किया गया है फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यह कार्य अन्वेषण की प्रक्रिया का एक भाग है क्योंकि इसका उद्देश्य इस प्रकार एकत्र की गई सामग्री के आधार पर कोई अन्तिम निष्कर्ष निकालना है। दण्ड प्रक्रिया का विस्तार।

4.6. हम "दण्ड प्रक्रिया" अभिव्यक्ति के विस्तार के बारे में यह उल्लेख कर देना चाहते हैं कि दण्ड प्रक्रिया की अनेक पुस्तकों में अन्वेषण के विषय की भी चर्चा की गई है। इसका एक महत्वपर्ण उदाहरण इस विषय की एक अमरीकी पुस्तक में मिलता है।[2] शैक्षणिक पद्धति–दण्ड प्रक्रिया की व्यापक विचारधारा।

एक दूसरे लेखक ने[3] अमरीका की विधिक पद्धति के बारे में पुलिस अन्वेषण की चर्चा करते हुए निम्नलिखित मत प्रकट किया है :—

> "दण्ड प्रक्रिया संहिता एक व्यापक विचारधारा है। इसमें आपराधिक अभियोजन के सम्पूर्ण क्षेत्र का वर्णन पुलिस अन्वेषण से प्रारम्भ से किया जाता है और इस प्रकार यह वास्तविक अभियोजन तक ही सीमित नहीं है जिसका प्रारम्भ अभ्यारोपण करने के समय होता है।"

4.7. इस विषय पर एक दूसरे दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। इस रिपोर्ट में[4] शनाख्त के विभिन्न पहलुओं का जो विश्लेषण पहले किया गया है उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि शनाख्त करने का मुख्य प्रयोजन दाण्डिक न्याय से संबंधित कुछ उद्देश्यों की पूर्ति करना है। इस दृष्टि से विचार करने पर 1920 के अधिनियम का संपूर्ण विषय "दण्ड प्रक्रिया" के विषय के अन्तर्गत मानना विधिसम्मत है। दाण्डिक न्याय से सम्बन्धित उद्देश्य।

4.8. हमने विधायी क्षमता के बारे में जो विचार प्रकट किये हैं[5] वे यदि विधि की दृष्टि से सही हैं तो 1920 के अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। जब ऐसा एक बार कर दिया जाता है तब इस अधिनियम की विभिन्न धाराओं में सुधार करने पर विचार करने का रास्ता साफ हो जाता है। अतः जिन परिवर्तनों के लिये प्रस्ताव किये जा रहे हैं उन्हें केवल धारा 5 तक सीमित रखना आवश्यक नहीं है। धारा 1 (2) का संशोधन किया जाना।

उपर्युक्त विचार विमर्श को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि इस अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर कर देना चाहिये। निःसंदेह संशोधक अधिनियम में ऐसी तत्स्थानी विधियों को, जो भाग "ख" राज्य में पहले समाविष्ट किये गये क्षेत्रों में प्रवृत्त थीं, निरसित करने और यथा आवश्यक संक्रमणकालीन उपबन्ध बनाने पर ध्यान दिया जाएगा।

---

1. ऊपर पैरा 4.3।
2. आरफील्ड, "क्रिमिनल प्रोसिड्योर फ्राम अरैस्ट टू अपील।
3. पीटरहे, "इन्ट्रोडक्शन टू यूनाइटेड स्टेट्स ला" (1976), पृष्ठ 193।
4. ऊपर पैरा 3.10।
5. ऊपर पैरा 4.7।

धारा 2—परिभाषाएं।

4.9. अब हम धारा 2 पर विचार करेंगे जिसमें तीन परिभाषाएं दी गई हैं।

खण्ड (क) में यह उपबन्ध है कि "नाप" के अन्तर्गत अंगुलि-चिह्न और पद-छाप चिह्न भी है।

खण्ड (ख) में यह उपबन्ध है कि "पुलिस अधिकारी" से किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अधीन अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी या कोई ऐसा अन्य पुलिस अधिकारी अभिप्रेत है जो उपनिरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो।

खण्ड (ग) के अनुसार "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गये नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है।

धारा 2 (क) और धारा 2 (ख) में परिवर्तन करने की सिफारिश।

4.10. हम केवल धारा 2 के खण्ड (क) और खण्ड (ख) के बारे में अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं। खण्ड (क) में "नाप" की जो परिभाषा दी गई है उसमें "हथेली के छाप" को भी जोड़ देना चाहिये। अपराधों के अन्वेषण में हथेली के छाप की उपयोगिता भलीभांति सिद्ध हो चुकी है।

खण्ड (ख) में 1898 की संहिता के प्रति जो निर्देश किया गया है उसके स्थान पर 1973 की संहिता (और उसके सुसंगत अध्याय) के प्रति निर्देश किया जाना चाहिये।

हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 2 (क) और धारा 2(ख) का तदनुसार संशोधन किया जाना चाहिये।

इंगलिश विधि से तुलना की जाए: (परिशिष्ट)।

अध्याय 5

नाप अंगुलि-चिह्न और फोटोग्राफ लिया जाना : धारा 3 से धारा 5 तक

I. बल प्रयोग करने के लिये कानूनी प्राधिकार ।

5.1. हम इस अध्याय में धारा 3 से धारा 5 तक की धाराओं पर विचार करना चाहते हैं । इन धाराओं में गिरफ्तार या दोषसिद्ध किये गये व्यक्तियों और अन्य व्यक्तियों से साक्ष्य की सामग्री एकत्र करने में कुछ उपाय अपनाने के लिये कानूनी प्राधिकार दिया गया है । ऐसे उपायों में बल का प्रयोग करने की मंजूरी की चर्चा धारा 6 में की गई है जिस पर आगे विचार किया जाएगा । *कानूनी प्राधिकार का महत्व ।*

5.2. यह भली भांति सिद्ध किया जा चुका है कि अंगुलिचिह्न या नाप लेने के लिये या किसी व्यक्ति को हस्ताक्षर के नमूने देने के लिये बाध्य करने के लिये किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकारी को सशक्त करने वाले विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध के अभाव में इन प्रयोजनों के लिये बल का प्रयोग किया जाना सिविल दोष की कोटि में आता है ।[1] यदि बलात् शारीरिक हस्तक्षेप वास्तव में किया जाता है या ऐसा करने की धमकी दी जाती है[2] तो इसके बारे में कामन लॉ में अपकृत्य की कार्रवाई (हमला या बैटरी के बारे में कार्रवाई) की जा सकती है । जहां ऐसी जबर्दस्ती का कोई "परिसाक्ष्य नहीं है" वहां संविधान के अनुच्छेद 20(3) के संदर्भ में संवैधानिक प्रकृति के प्रश्न नहीं उठ सकते किन्तु फिर भी अपकृत्य की साधारण विधि का अनुपालन करना पड़ेगा । *बिना प्राधिकार के बल का प्रयोग अवैध ।*

5.3. यह भी बात है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के बारे में यह समझना कि उसमें किसी व्यक्ति को शास्ति[3] का भय दिखलाकर उसे अपने हस्ताक्षर देने या अपना शारीरिक साक्ष्य देने के लिये निर्दिष्ट करने की कोई विवक्षित शक्ति विद्यमान है, दण्ड प्रक्रिया संहिता के भावार्थ के विरुद्ध है । *दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 49 ।*

इस संदर्भ में नीचे उद्धृत की गई दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 49 सुसंगत है —

> **"49. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को उससे अधिक अवरुद्ध न किया जाएगा जितना उसको निकल भागने से रोकने के लिये आवश्यक है ।"**

अतः इस प्रकार निर्बन्धित करके जिस परिसाक्ष्य को उपाप्त करने का प्रयास किया जाता है यदि वह परिसाक्ष्य "संवाद करने" की प्रकृति का नहीं है तो प्रपीड़न के उपाय तभी वैध होंगे जब कि उनके लिये विनिर्दिष्ट कानूनी प्राधिकार विद्यमान हैं, अन्यथा वे अवैध होंगे । इससे धारा 3 से धारा 5 तक का महत्व दर्शित होता है जिनमें नापों और फोटोग्राफों के बारे में ऐसा प्राधिकार प्रदान किया गया है ।

5.4. इसमें कोई सन्देह नहीं है जहां तक फोटोग्राफ की बात है, जिस व्यक्ति का फोटोग्राफ लिया जाना है उस व्यक्ति की सहमति के बिना उसका फोटोग्राफ लिया जाना उस स्थिति के अनुसार अवैध नहीं है जैसी कि भारत में साधारणतया समझी जाती है । किन्तु किसी व्यक्ति को अपना फोटो खिंचवाने के वास्ते उसे खड़ा होने के लिये बाध्य करने में **बल का प्रयोग** करने के लिये कानूनी प्राधिकार की आवश्यकता होगी और धारा 6 में ठीक ठीक इसी बात के लिये उपबन्ध किया गया है । *फोटोग्राफों का लिया जाना ।*

---

1. भारत का विधि आयोग, सैंतीसवीं रिपोर्ट (दण्ड प्रक्रिया संहिता धारा 1 से धारा 176 तक) परिशिष्ट 3, पृष्ठ 203 से 208 तक ।
2. भारत का विधि आयोग, उन्हत्तरवीं रिपोर्ट (साक्ष्य अधिनियम), अध्याय 33 ।
3. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 49 ।

II. उचित दृष्टिकोण---विधि प्रवर्तन और स्वतंत्रता के बीच सन्तुलन ।

धारा 3 से धारा 5 तक का महत्व ।

5.5. प्रपीड़न के ऐसे उपाय---अर्थात् शनाख्त के साक्ष्य उपाप्त करने के लिये बल का प्रयोग करने का प्राधिकार धारा 6 के साथ पठित धारा 3, 4 और 5 से व्युत्पन्न होता है। धाराएं 3, 4 और 5 पुलिस को या कुछ मामलों में मजिस्ट्रेट को यह शक्ति प्रदान करती हैं कि वह सम्बद्ध व्यक्तियों को विनिर्दिष्ट प्रकार का प्रदर्शनात्मक साक्ष्य पेश करने के लिये निदेश दे। धारा 6 इस प्रयोजन के लिये बल प्रयोग करने का प्राधिकार देती है। ये उपबन्ध इस अधिनियम के अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग हैं।

इन प्रवर्तनशील उपबन्धों में कुछ बातों के बारे में सुधार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। उदाहरण के लिये, विभिन्न वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से ऐसे कुछ विशेष प्रकार के साक्ष्य जोड़ने का उपबन्ध करना पड़ेगा जिन्हें गिरफ्तार या दोषसिद्ध किये गये व्यक्ति द्वारा पेश करने का निदेश दिया जा सकता है। अपराधों का पता लगाने और उनके निवारण के लिये ऐसे अपराधों की सूची में भी वृद्धि करना भी आवश्यक होगा जिनके संबंध में ऐसे साक्ष्य (गिरफ्तारी के पश्चात्) पेश करने की अपेक्षा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि यदि किसी "अपराध" का आरोप ठीक अर्थ में नहीं भी लगाया गया है तब भी सद्व्यवहार के लिये विधि के अधीन कार्यवाहियां या सदृश कार्यवाहियां करनी पड़ी हैं इसलिये सुसंगत उपबन्धों के प्रविषय का विस्तार करना अपेक्षित है।

मानवीय अधिकारों का पहलू ।

5.6. इन उपबन्धों के प्रविषय का विस्तार करने के साथ ही व्यष्टि की स्वतंत्रता का संरक्षण करने की आवश्यकता को भूलना नहीं चाहिये। यह विषय मानवीय अधिकारों के संवेदनशील क्षेत्र से---विधि के अधीन शारीरिक सुरक्षा और शारीरिक हस्तक्षेप से---संबंधित है।[1] यह मूल महत्व का पहलू है। हम आशा करते हैं कि अपनी सिफारिशें तैयार करते समय हम इस महत्वपूर्ण पहलू को नहीं भूलेंगे।

III. हस्ताक्षर के नमूने लेना और संशोधन करने के लिये सम्भव विधायी युक्तियां ।

5.7. प्रवर्तनशील उपबन्धों की विषयवस्तु की चर्चा करने के पूर्व हम उस विधायी युक्ति पर विचार करना चाहेंगे जो उच्चतम न्यायालय द्वारा एक निर्णय[2] में दिये गए सुझाव को क्रियान्वित करने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। हम पहले ही इसके प्रति निर्देश[3] कर चुके हैं। उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 को किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा करने के लिये लागू नहीं किया जा सकता है कि वह **अन्वेषण के प्रक्रम में अपने हस्तलेख का नमूना दे**, यह बात भी कही थी कि अन्वेषण के दौरान हस्तलेख या हस्ताक्षर के नमूने देने की अपेक्षा करने की शक्तियां मजिस्ट्रेट को विनिहित करने के लिये "उपयुक्त विधान" (शनाख्त अधिनियम, 1920 की धारा 5 के सदृश) अधिनियमित किया जाना चाहिये।

उच्चतम न्यायालय ने जिस मुद्दे पर सुझाव दिया है उसके बारे में विधि का संशोधन करने की आवश्यकता के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता है। अब इस प्रश्न पर विचार किया जाना अपेक्षित है कि प्रश्नगत उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कौन सी विधायी युक्ति अपनायी जाए। मजिस्ट्रेट को प्रश्नगत शक्ति विनिहित करने के उद्देश्य की पूर्ति निम्नलिखित अनेक आनुकल्पिक युक्तियों में से किसी एक को अपना कर की जा सकती है :---

(i) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 का संशोधन करके;[4]

(ii) बन्दी शनाख्त अधिनियम, 1920 का संशोधन करके;[5]

(iii) इस प्रयोजन के लिये एक अलग विधि बनाकर;[6]

---

1. ऊपर पैरा 1.7 भी देखिए।
2. स्टेट आफ यू० पी० बनाम राम बाबू मिश्र, (1980), खण्ड 2, भाग 3, एस० सी० सी० 343 (1 मई 1980)।
3. ऊपर पैरा 1.1।
4. आगे पैरा 5.8।
5. आगे पैरा 5.9।
6. आगे पैरा 5.10।

इसमें कोई सन्दह नहीं है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 का संशोधन करने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि उस अधिनियम का सम्बन्ध अन्वेषण के प्रक्रम से नहीं है।

इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि उच्चतम न्यायालय ने ऐसा कोई विचार प्रकट नहीं किया था जिससे यह विवक्षित हो कि इस प्रयोजन के लिये 1920 के अधिनियम का संशोधन या उसमें कुछ जोड़ा जाए या इसके लिये कोई विशिष्ट अधिनियम बनाया जाए[1]। (उच्चतम न्यायालय के निर्णय में) "उपयुक्त विधान" शब्दों का प्रयोग किये जाने से यह विषय लचीला हो गया है। इसके संबंध में हमने, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अनेक आनुकल्पिक युक्तियों पर विचार किया है। वर्तमान कानूनी ढांचे की जांच करने पर हमारा यह समाधान हो गया है कि 1920 के अधिनियम में आवश्यक संशोधन करना सबसे आसान तरीका होगा। नीचे संक्षेप में प्रत्येक आनुकल्पिक युक्ति पर विचारविमर्श किया गया है जिससे हमारे निष्कर्ष का समर्थन हो जाएगा।

संहिता का संशोधन करना पसन्द नहीं।

5.8. पहला अनुकल्प[2] दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 का संशोधन करना है। ऐसा संशोधन संहिता के उस अध्याय में, जिसका सम्बन्ध अन्वेषण से है (धारा 165क, 165ख और इसी प्रकार की अन्य धाराओं में) या तलाशी से संबंधित अध्याय में उपयुक्त उपबन्धों को अन्तःस्थापित करके किया जा सकता है। किन्तु यदि ऐसा किया जाता है तो अनेक आनुषंगिक विषयों की चर्चा करने के लिये कई और उपबन्ध---शास्तियों, परिभाषाओं तथा नियमों के रूप में---जोड़ने पड़ेंगे और इससे संपूर्ण संहिता की समरूपता भले ही न बिगड़े लेकिन संहिता के अध्याय 14 का चुस्त रूप तो बिगड़ ही जाएगा।

यह भी बात है कि जिस शक्ति को जोड़ने का प्रस्ताव किया जा रहा है उसके विस्तृत क्रियान्वयन के लिये कुछ विषयों के बारे में नियम बनाने आवश्यक होंगे और यह तरीका संहिता के साधारण पैटर्न और शैली के अनुकूल नहीं है। अतः संहिता का संशोधन करने में कुछ गंभीर त्रुटियां हैं।

दूसरा अनकल्प पसन्द किया जाना।

5.9. हमने जिस दूसरे अनुकल्प[2] का अर्थात् 1920 के अधिनियम का संशोधन करने का जो उल्लेख किया है वह तुलना करने पर अधिक आसान प्रतीत होता है। इस अधिनियम में अपेक्षित उपबन्धों (मूल और पारिणामिक दोनों प्रकार के उपबन्धों) को अन्तःस्थापित करना अधिक समुचित है। मूल उपबन्धों को अर्थात् किसी व्यक्ति से हस्ताक्षर करने की अपेक्षा करने की शक्ति प्रदान करने वाले उपबन्धों को जोड़ना इस अधिनियम के वर्तमान ढांचे को कुछ बिगाड़े बिना सम्भव है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि इस अधिनियम का संशोधन करने में कानूनी विषयों को कम से कम जोड़ना पड़ेगा। इस अधिनियम में पहले से ही ऐसे विस्तृत उपबन्ध हैं जिनमें विनिर्दिष्ट प्रकार के प्रदर्शनात्मक साक्ष्य को पेश करने के निदेश के आनुषंगिक या पारिणामिक विषयों की चर्चा की गई है।

इस अधिनियम के सुसंगत प्रवर्तनशील उपबन्ध में यथोचित संशोधन करके प्रदान की जाने वाली किसी नई शक्ति की चर्चा की जा सकती है और इसके विद्यमान आनुषंगिक उपबन्धों में नई शक्ति के प्रयोग किये जाने के लिये आनुषंगिक उपबन्धों को आसानी से रखा जा सकता है।

वस्तुतः, इस अधिनियम की धारा 6 से धारा 8 तक की धाराओं में मामूली संशोधन करके आनुषंगिक विषयों के लिये पर्याप्त रूप से उपबन्ध किया जा सकता है और इस प्रक्रिया में कम से कम कानूनी विषय को जोड़ना पड़ेगा। अतः 1920 के अधिनियम का संशोधन करना पसन्द किया जा रहा है।

अलग विधान बनाने का प्रश्न।

5.10. हमने तीसरे अनुकल्प[2] अर्थात् इस विषय की चर्चा करने के लिये अलग विधान अधिनियमित करने के प्रश्न पर भी विचार किया है। किन्तु यदि यह युक्ति अपनाई जाती है तो 1920 के अधिनियम का संशोधन करने से होने वाले फायदे, जिनके प्रति हम पहले निर्देश कर चुके[3] हैं, खो देने पड़ेंगे। नई अधिनियमित की जाने वाली अलग विधि में अनेक आनुषंगिक विषयों के लिये उपबन्ध करना पड़ेगा और इस प्रकार यह काम दुबारा होगा। अतः हम 1920 के अधिनियम का संशोधन करने की अपनी पसन्द को ही कायम रखना चाहते हैं जो उच्चतम न्यायालय के निर्णय में उठाए[2] गये मुद्दे को हल करने के लिये सबसे सुगम तरीका है।

1. ऊपर पैरा 1.1 और पैरा 5.5।
2. ऊपर पैरा 5.7।
3. ऊपर पैरा 5.9।

एक अलग अधिनियम बनाने पर उसमें ब्यौरे की अनेक बातों के लिये उपबन्ध करना पड़ेगा । भारत में विधायी प्रारूपण की पद्धतियों और उसकी परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे उपबन्धों में जो अन्तःस्थापित किये जाने हों, 1920 के अधिनियम की शब्दावली का ठीक ठीक अनुसरण करना पड़ेगा । यदि संभव हो तो इस तरह का तरीका अपनाने से बचना चाहिये क्योंकि इससे कानून की पुस्तक में अनावश्यक रूप से सामग्री भर जाएगी और कुछ प्रतिपादनाओं को पुनः प्रतिपादित करना पड़ेगा ।

अतः इस मुद्दे पर प्रभावकारी सुधार करने के सीमित प्रयोजन के लिये भी 1920 के अधिनियम का संशोधन करना ही सबसे सुगम तरीका है । वस्तुतः यह मुद्दा धारा 5 के सदृश है ।

1920 के अधिनियम का संशोधन किया जाना ।

5.11. अतः हम 1920 के अधिनियम में आवश्यक संशोधन को सम्मिलित करने की आनुकल्पिक युक्ति को प्रथमदृष्टया अपनाना चाहते हैं । हमारा यह विचार है कि इसे अपनाने से कोई विधिक या व्यावहारिक गंभीर समस्या उत्पन्न होने की संभावना नहीं है ।

IV. पुलिस की शक्तियां––धारा 3 और धारा 4।

धारा 3––वे परिवर्तन जिनके लिए सिफारिश की गई है ।

5.12. हम प्रवर्तनशील उपबन्धों के संबंध में इन साधारण विचारों को व्यक्त करने के पश्चात् इन उपबन्धों की विषय-वस्तु और उनके पाठ पर आगे विचार करेंगे ।

धारा 3––राज्य संशोधन ।

5.13. धारा 3 में ऐसे प्रत्येक व्यक्ति से जो किसी विनिर्दिष्ट अपराध से दोषसिद्ध किया गया है या जिसे सदाचार के लिये दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन प्रतिभूति देने के लिये आदेश दिया गया है, यह अपेक्षा की गई है कि वह पुलिस द्वारा अपनी नाप और फोटोग्राफ विहित रीति से उस दशा में लेने देगा जब कि ऐसा लिया जाना अपेक्षित हो । इस निमित्त जिन अपराधों का उल्लेख किया गया है, वे एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिये कठोर कारावास से दण्डनीय अपराध हैं और जिनसे दोषसिद्ध किया गया व्यक्ति उनके परिणामस्वरूप वह **पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर वर्णित दण्ड का दायी होगा ।**

इस धारा को क्रियान्वित करने में अनुभव की गई व्यावहारिक कठिनाइयों के परिणामस्वरूप––संभावतः इसके सीमित विस्तार के कारण के––राज्यों ने इस धारा में व्यापक संशोधन किया है । हमने इन संशोधनों को पढ़ा है और अपने अध्ययन के फलस्वरूप हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस धारा के विस्तार को कुछ दिशाओं की ओर बढ़ाना आवश्यक है । उदाहरण के लिये, धारा 3 में एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कठोर कारा-वास से दण्ड की जो कसौटी रखी गई है वह तो ठीक है किन्तु कुछ ऐसे अपराधों को भी उनकी प्रगति और इस बात को ध्यान में रखकर इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिये कि अभिलाभ की दृष्टि से व्यवहार में उनके बार बार किये जाने की संभावना है । इस कारण से हम यह सिफारिश करते हैं कि अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 19 के अधीन अपराध को 1920 के अधिनियम की धारा 3 में सम्मिलित कर लेना चाहिये । धारा 19 में ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने का उपबन्ध है जो अनुज्ञप्ति के बिना किसी ऐसे व्यापार में लगा हुआ है या उसका नियंत्रण करता है जिससे अनिष्टकर मादक द्रव्य भारत के बाहर उपाप्त किया जाता है और भारत में प्रदाय किया जाता है । ऐसा कार्य किये जाने में इसके कमीशन से पर्याप्त लाभ प्रोद्भूत होने की दृष्टि से इस अपराध के बार-बार किये जाने की संभावना है ।

अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम की धारा 18 ।

5.14. हमारी राय में अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम की धारा 19 के अधीन दोषसिद्धि के मामले के अतिरिक्त[1] ऐसे व्यक्ति का मामला भी इस अधिनियम की धारा 3 में सम्मिलित किया जाना चाहिये जिसके बारे में अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम की धारा 18 के अधीन आदेश दिये गये हैं । उक्त अधिनियम की धारा 18(1) इस प्रकार है :––

"18. **कतिपय अपराधों को करने से प्रविरत रहने के लिये प्रतिभूति** (1) जब कभी कोई भी व्यक्ति धारा 10, धारा 12, धारा 13 या धारा 14 के अधीन दण्डनीय किसी अपराध का सिद्धदोष

1. ऊपर पैरा 5.13।

होता है और उसे सिद्धदोष करने वाले न्यायालय की यह राय है कि यह आवश्यक है कि ऐसे व्यक्ति से उन धाराओं के अधीन दण्डनीय अपराधों को करने से प्रविरत रहने के लिये एक बन्धपत्र निष्पादित करने की अपेक्षा की जाए तो वह न्यायालय, ऐसे व्यक्ति को दण्डित करने के समय उसे आदेश दे सकेगा कि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान जिसे नियत करना वह न्यायालय ठीक समझता है ऐसे अपराधों को करने से प्रविरत रहने के लिये प्रतिभुओं के सहित या उनसे रहित, अपने साधनों की आनुपातिक राशि के लिये एक बन्धपत्र निष्पादित करे।"

हमारी राय में ऐसे व्यक्तियों को उस विषय के प्रयोजनों के लिये, जिस पर हम इस समय विचार विमर्श कर रहे हैं, ऐसे स्तर के व्यक्ति मानना चाहिये जिन्हें धारा 3 लागू होती है। उक्त अधिनियम के संक्षिप्त नाम में "अनिष्टकर" विशेषण का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

5.15. ऊपर जिन संशोधनों के लिये सिफारिश की गई है उनसे धारा 3 का विस्तार तो बढ़ जाएगा किन्तु इस धारा में कुछ अन्य मामूली परिवर्तन भी अपेक्षित हैं। खण्ड (ख) में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के प्रति जो निर्देश किया गया है उसके स्थान पर दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबन्ध के प्रति निर्देश किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त, इस धारा की अंतिम पंक्ति में "यदि उससे वैसी अपेक्षा की जाए तो" शब्दों के स्थान पर "यदि किसी पुलिस अधिकारी द्वारा उससे वैसी अपेक्षा की जाए तो" शब्दों को इस उपबन्ध की दृष्टि से रखना चाहिये।[1]

धारा 3 में कुछ अन्य मामूली परिवर्तन।

5.16. ऊपर जो विचार विमर्श किया गया है उसे ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 3 का पुनरीक्षण निम्नलिखित रूप में किया जाना चाहिये :—

धारा 3 का पुनः प्रारूपण करने का सुझाव।

पुनरीक्षित धारा 3

"3. प्रत्येक व्यक्ति, जिसे—

(क) एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिये कठिन कारावास से दण्डनीय किसी अपराध से दोषसिद्ध किया गया है, या

(ख) अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 19 के अधीन दण्डनीय किसी अपराध से दोषसिद्ध किया गया है, या

(ग) किसी ऐसे अपराध से दोषसिद्ध किया गया है जिसके परिणामस्वरूप वह किसी पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर वर्धित दण्ड का दायी होगा, या

(घ) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 117 के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन अपने सदाचार के लिये प्रतिभूति देने का आदेश दिया गया है, या

(ङ) अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 18 के अधीन कुछ अपराधों[2] के करने से प्रविरत रहने के लिये प्रतिभूति देने का आदेश दिया गया है,

यदि उससे **पुलिस अधिकारी द्वारा,** वैसी अपेक्षा की जाए तो पुलिस अधिकारी को, विहित रीति से, अपनी नाप और फोटोग्राफ लेने देगा।"

5.17. धारा 4 में यह उपबन्ध है कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति से, जो एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि कठोर कारावास से दण्डनीय अपराध के संबंध में गिरफ्तार या दोषसिद्ध किया गया है, पुलिस अधिकारी द्वारा अपेक्षा की जाए तो, उसकी नाप ली जा सकती है इस धारा में राज्यों द्वारा किये गये संशोधनों से इसका विस्तार कई दिशाओं में बढ़ गया है।

धारा 4—राज्य संशोधन।

---

1. धारा 4 की तुलना कीजिए।
2. अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम की धारा 18 के अधीन कुछ अपराधों को करने से प्रविरत रहने के लिए प्रतिभूति की अपेक्षा की जा सकती है।

पहली बात यह है कि इस धारा में सम्बद्ध व्यक्ति का फोटोग्राफ लेने की शक्ति प्रदान की गई है।

दूसरी बात यह है कि यह धारा ऐसे व्यक्तियों को भी लागू की गई है जिन्हें अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम[1] की धारा 19 या औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम, 1954 की धारा 7 या स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम, 1956 की धारा 8 के अधीन गिरफ्तार किया गया है।[2]

तीसरी बात यह है कि यह धारा ऐसे व्यक्तियों को भी लागू की गई है जो दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 54, धारा 55 या धारा 151 (अब 1973 की संहिता की धारा 41 और धारा 151) के अधीन गिरफ्तार किया गया है।[3]

चौथी बात यह है कि यह धारा ऐसे व्यक्तियों को भी लागू की गई है जिनके बारे में पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920 की धारा 5 के अधीन निदेश या आदेश दिया गया है। उक्त धारा 5 में केन्द्रीय सरकार को यह प्राधिकार दिया गया है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसने भारत में पासपोर्ट के बिना प्रवेश किया है, भारत से बाहर जाने का आदेश दे सकती है।

पांचवी बात यह है कि यह धारा ऐसे व्यक्तियों को भी लागू की गई है जिन्हें दण्ड प्रक्रिया संहिता के कुछ उपबन्धों के अधीन माफी दी गई है। अंतिम बात यह है कि यह है कि यह धारा ऐसे व्यक्तियों को भी लागू की गई है जिन्हें पुलिस से और भिखारियों तथा आभ्यासिक अपराधियों से सम्बन्धित कुछ स्थानीय विधियों के अधीन अपराधों के बारे में गिरफ्तार किया गया है।[4]

धारा में सुधार करने की आवश्यकता।

5.18. हमारी यह राय है कि इनमें से अनेक संशोधन अपराध का पता लगाने और उसका निवारण करने के महत्व की दृष्टि से तथा संदिग्ध अपराधियों के अभिलेख बनाए रखने के लिये और शनाख्त के विभिन्न उद्देश्यों की समाधानप्रद पूर्ति के लिये संपूर्ण भारत में अपनाए जाने के योग्य हैं। इन संशोधनों में से कुछ तो स्थानीय हित के हैं और कुछ अन्य संशोधन अखिल भारतीय महत्व के हैं। इसके साथ ही हम इस धारा के विस्तार को बहुत व्यापक बनाना चाहते हैं।

पुलिस द्वारा धारा 41 के अधीन गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों के बारे में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 41(2) को सम्मिलित कर लेना ही पर्याप्त होगा। यह धारा नीचे उद्धृत की जा रही है।

> "41(2). कोई पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी किसी ऐसे व्यक्ति को, जो धारा 109 या धारा 110 में विनिर्दिष्ट व्यक्तियों के प्रवर्गों में से एक या एक से अधिक का हो, इसी प्रकार गिरफ्तार कर सकता है या करा सकता है।"

इसके अन्तर्गत दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 151(1) को अभिव्यक्त रूप से सम्मिलिति किया जा सकता है। यह धारा इस प्रकार है :—

> "151[1](1) कोई पुलिस अधिकारी, जिसे कोई संज्ञेय अपराध करने की परिकल्पना का पता है, ऐसी परिकल्पना करने वाले व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के आदेशों के बिना और वारन्ट के बिना उस दशा में गिरफ्तार कर सकता है जिसमें ऐसे अधिकारी को प्रतीत होता है कि उस अपराध का किया जाना अन्यथा नहीं रोका जा सकता।"

अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 19 के प्रति पहले ही निर्देश किया जा चुका है[1]। इस धारा में ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने का उपबन्ध है "जो अधिनियम द्वारा अनुदत्त अनुज्ञप्तियों की शर्तों से अन्यथा किसी ऐसे व्यापार में संलग्न होगा या उसका नियंत्रण करेगा जिसमें कोई अनिष्टकर मादक द्रव्य भारत से बाहर अभिप्राप्त किया जाता है और भारत से बाहर किसी व्यक्ति को प्रदाय किया जाता है।"

---

1. ऊपर पैरा 5.13।
2. 1970 का महाराष्ट्र अधिनियम 35 से तुलना कीजिए।
3. महाराष्ट्र और गुजरात के संशोधनों से तुलना कीजिए।
4. 1970 का महाराष्ट्र अधिनियम 35, धारा 425 का संशोधन और 1953 के बम्बई अधिनियम 58 द्वारा अंतःस्थापित नई धारा 4 क।

औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम, 1954 की धारा 7 में ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने का उपबन्ध है जो "अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों के किसी उपबन्ध का उल्लंघन करेगा"।

स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम, 1956 की धारा 8 में वेश्यावृत्ति के प्रयोजनों के लिए विलुब्ध या याचना करने के कार्य के लिए दण्ड देने का उपबन्ध है।

पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920 की धारा 4 में किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने का उपबन्ध है "जिसने धारा 3 के अधीन बनाए गए किसी नियम या दिए गए किसी आदेश का उल्लंघन किया है या जिसके खिलाफ इस बात का युक्तियुक्त सन्देह विद्यमान है कि उसने उसका उल्लंघन किया है"।

पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920 की धारा 5 में "किसी ऐसे व्यक्ति को भारत से हटाए जाने का निदेश या आदेश देने का उपबन्ध है जिसने पासपोर्ट के बिना भारत में प्रवेश प्रतिषिद्ध करने वाले किसी नियम के उल्लंघन में, जो धारा 3 के अधीन बनाया गया हो, यहां प्रवेश किया हो ...."।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 306 में यह उपबन्ध है कि किसी ऐसे अपराध से, जिसे यह धारा लागू होती है, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सम्बद्ध या संसर्गित समझे जाने वाले किसी व्यक्ति को क्षमादान किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को इस शर्त पर क्षमादान किया जाता है कि वह अपराध के सम्बन्ध में पूर्ण और सत्य प्रकट न कर दे।

इस संहिता की धारा 307 में यह उपबन्ध है कि किसी अपराध से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सम्बद्ध या संसर्गित समझे जाने वाले किसी व्यक्ति को क्षमादान किया जा सकता है।

ये सब समाज विरोधी गंभीर प्रकृति के ऐसे अपराध हैं जो लाभ के लिए बार-बार किए जाते हैं। ऐसे मामलों में शनाख्त की सामग्री—जैसे अंगुलि-चिह्न और फोटोग्राफ—विशेष रूप से उपयोगी होगी।'

5.19 हम ऊपर कही गई बातों को ध्यान में रखते हुए यह सिफारिश करते हैं कि धारा 4 का पुनरीक्षण निम्नलिखित रूप में किया जाना चाहिए :— **धारा 4 के पुनरीक्षण की सिफारिश।**

पुनरीक्षित धारा 4

"4. कोई व्यक्ति, जिसे—

(क) एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए कठिन कारावास से दण्डनीय किसी अपराध के सम्बन्ध में गिरफ्तार किया गया है, या

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 की उपधारा (2) के अधीन गिरफ्तार किया गया है, या

(ग) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 151 के अधीन गिरफ्तार किया गया है, या

(घ) (i) अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 19, या

(ii) औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम, 1954 की धारा 7, या

(iii) स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम, 1956 की धारा 8 के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के सम्बन्ध में गिरफ्तार किया गया है, या

(ङ) पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920 की धारा 4 के अधीन गिरफ्तार किया गया है, या

(च) पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920 की धारा 5 के अधीन निदेश या आदेश दिया गया है या

(छ) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 306 या धारा 307 के अधीन क्षमा प्रदान की गई है।

यदि किसी पुलिस अधिकारी द्वारा वसी अपेक्षा की जाए तो किसी पुलिस अधिकारी को विहित रीति से, अपनी नाप या अपना फोटोग्राफ लेने देगा।

V. मजिस्ट्रेट के आदेश---धारा 5---हस्ताक्षर के बारे में वर्तमान स्थिति ।

धारा 5 ।

5.20. अब हम धारा 5 पर विचार करेंगे । यह धारा मजिस्ट्रेट को इस बात के लिए सशक्त करती है यदि उसका समाधान हो जाता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (यही संहिता तत्समय प्रवृत्त थी) के अधीन किसी अन्वेषण या कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति को यह निदेश देना समीचीन है कि वह अपनी नाप या अपना फोटोग्राफ लेने दे तो वह वैसा आदेश कर सकेगा ।

तब जिस व्यक्ति को ऐसा निदेश दिया जाता है उसके लिए यह बाध्यकर हो जाता है कि वह आदेश में विनिर्दिष्ट समय और स्थान पर हाजिर हो और पुलिस अधिकरी को अपनी नाप या फोटोग्राफ लेने दे । इस धारा के दो उपबन्धों में इस निमित्त कुछ रक्षोपाय हैं ।

हस्ताक्षर के नमूने लेने के बारे में स्थिति ।

5.21. यह ध्यान देने की बात है कि धारा 5 का जो वर्तमान रूप है उसके अधीन कोई ऐसा आदेश नहीं दिया जा सकता है जिसमें किसी व्यक्ति को अपने हस्ताक्षर या हस्तलेख के नमूने देने का निदेश दिया जाए ।

इस धारा का ऐसा संकीर्ण विस्तार जिन कारणों से है वे अंशतः ऐतिहासिक हैं । 1920 के अधिनियम का प्रारूपण तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया था । वास्तव में जिस कठिनाई का अनुभव 1915 ई० के आस पास किया गया था वह केवल फोटोग्राफों और अंगुलि-चिह्नों के सम्बन्ध में थी । हस्ताक्षर के नमूने लेने में किसी कठिनाई की रिपोर्ट नहीं मिली थी ।

1915 के पूर्व और उसके पश्चात् स्थिति ।

5.22. ऐसा प्रतीत होता है कि फाटोग्राफों और अंगुलि-चिह्नों के बारे में किस कठिनाई का अनुभव 1915 ई० के पूर्व नहीं किया गया था । किन्तु 1915 में बंगाल सरकार ने राजा बाजार बम काण्ड में दोषसिद्ध किए गए ऐसे दो खतरनाक षडयंत्रकारियों के मामले की ओर ध्यान आकृष्ट कराया था जो अपना फोटोग्राफ खिचवाने से लगातार इन्कार करते रहे । उस सरकार ने यह रिपोर्ट दी थी कि ऐसी घटनाएं बार-बार हो रही हैं जिनमें बन्दियों ने अपना अंगुलि-चिह्न या फोटोग्राफ लिए जाने से इन्कार किया है । इस पृष्ठभूमि के आधार पर बंगाल सरकार ने पुलिस अधिनियम और बन्दी अधिनियम में संशोधन करने का सुझाव इस दृष्टि से दिया था कि पुलिस अधिकारियों और जेल अधीक्षकों को गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों, विचाराधीन बन्दियों और अभियुक्त व्यक्तियों के अंगुलि-चिह्न, नाप आदि लेने के लिए समर्थ बनाया जा सके ।[1]

भारत सरकार ने सम्पूर्ण प्रश्न की जांच करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला था---

"ऐसी पद्धति को, जो भारत में पुलिस के सामान्य कार्य की आनुषंगिक पद्धति है, नियमित आधार पर स्थापित करने में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए ।"

हस्ताक्षर लेने के सम्बन्ध में कोई कठिनाई अनुभव नहीं की गई थी । अतः 1920 में इस मुद्दे पर कोई उपबन्ध बनाना अनुध्यात नहीं था ।

अभी तक विधिक प्रश्नों को न उठाया जाना ।

5.23. वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि 1920 के पश्चात् भी शनाख्त का साक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रपीड़न के उपायों की वैधता का प्रश्न न्यायालयों के समक्ष प्रत्यक्षतः विवाद्यक के रूप में नहीं उठाया गया । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् न्यायालयों के समक्ष अनिवार्य रूप से साक्ष्य लेने के संदर्भ में कुछ संवैधानिक प्रश्नों पर वाद-विवाद हुआ है । किन्तु अपकृत्य की साधारण विधि के अधीन स्थिति पर भारत में विस्तार से विचार नहीं किया गया है । एक प्रमुख मामले में भी[2] जो संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अधीन स्वयं को अपराध में फंसाने वाला मामला था, इस पद्धति को इस रूप में चुनौती नहीं दी गई थी । यह मामला भूतपूर्व बम्बई राज्य में विवाद्य विषय दस्तावेजों के एक सेट के बारे में था जिसका सम्बन्ध अभियुक्त से लिए गए हस्ताक्षर के कुछ नमूनों से था ।

---

1. राष्ट्रीय अभिलेखागार, 1920 के अधिनियम 33 से सम्बन्धित कागजपत्र, गृह विभाग द्वारा भारत के सैक्रेटरी आफ स्टेट को भेजा गया तारीख 18 सितम्बर, 1918 का पत्र सं० 1918 के 6 ।
2. काठी कालू, ए० आई० आर० 1961 सुप्रीम कोर्ट, 1808, 1816 पैरा 21 ।

किन्तु इसके बारे में स्थिति अब बदल गई है। उच्चतम न्यायालय ने इसके बारे में जो विचार प्रकट किए हैं[1] और जिनके प्रति पहले निर्देश किया गया है उनसे इस पहलू की विस्तार से जांच करना वांछनीय है।

5.24. इस बात पर ध्यान देना हितकर होगा कि इंगलैण्ड में हस्ताक्षर लेने के लिए बल प्रयोग करने की कोई शक्ति ग्रहण नहीं की गई है, यद्यपि कानूनी विनियमों में अंगुलि-चिह्न लेने का उपबन्ध किया गया है। हम परिशिष्ट में इंग्लिश विधि[2] को कुछ विस्तार से दे रहे हैं। इंगलैंड में हस्ताक्षर के बारे में स्थिति।

5.25. हस्ताक्षर लेने के बारे में उपबन्ध न होने के परिणामस्वरूप धारा 5 में जो कमी भारत में अनुभव की गई है वह उच्चतम न्यायालय के समक्ष मामले में निर्णायक सिद्ध हुई है[3]। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 अन्वेषण के प्रक्रम पर लागू नहीं होती है यथोचित विचार प्रकट किए थे जो इस प्रकार हैं:— उच्चतम न्यायालय का सुझाव।

"हम तदनुसार अपील खारिज करते हैं और ऐसा करते हुए यह सुझाव देना चाहते हैं कि शनाख्त अधिनियम की धारा 5 के सदृश एक **उपयुक्त विधान**[4] यह उपबन्ध करने के लिए बनाया जाए जिसमें मजिस्ट्रेटों को यह शक्ति प्रदान करने का उपबन्ध हो कि वे किसी व्यक्ति को, जिसके अन्तर्गत अभियुक्त व्यक्ति भी है, अपने हस्ताक्षर और लेखन के नमूने देने के लिए निदेश दे सकते हैं।"

हस्ताक्षर के नमूने के बारे में पहले ही कठिनाई उत्पन्न हो चुकी है इसलिए इस मुद्दे पर विधि में उचित संशोधन करना आवश्यक है। हम इस अध्याय के अन्त में[5] धारा 5 को उपयुक्त रूप में पुनः प्रारूपित करने का सुझाव देंगे।

VI. आवाज की रिकार्डिंग।

5.26. एक दूसरे पहलू से भी धारा 5 के विस्तार को बढ़ाना आवश्यक है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन पुलिस को अन्वेषण करने की जो साधारण शक्ति प्रदान की गई है उससे यह विवक्षित नहीं होता है कि इसमें अभियुक्त से अपनी आवाज के नमूने देने की अपेक्षा करने की भी शक्ति है। ऐसे मामलों की तो जानकारी है जिनमें अपराधी की आवाज से तुलना करने के लिए अभियुक्त की आवाज अभिप्राप्त की गई थी किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में अभी तक इस प्रश्न पर वाद-विवाद नहीं हुआ है कि अभियुक्त को ऐसा करने के लिए, अर्थात् अपनी आवाज देने के लिए **बाध्य किया जा सकता है या नहीं।** आवाज की शनाख्त—वर्तमान स्थिति।

भारत में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध नहीं है जिसमें पुलिस अधिकारी या न्यायालय को अभिव्यक्त रूप से यह शक्ति दी गई हो कि वह अभियुक्त व्यक्ति से अपनी आवाज का नमूना देने की अपेक्षा कर सकता है।

5.27. अन्वेषण में आवाज की रेकार्डिंग का प्रयोग किया जाना उपयोगी प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए ध्वनि-रिकार्डिंग उस दशा में बहुत उपयोगी होगी जिसमें स्वराघात या जतलाहट महत्वपूर्ण है। अध्याय 5—आवाज रेकार्डर की उपयोगिता।

वाणी अभिलेखन (वायस प्रिन्ट)[6] आवाज की दृश्य रेकार्डिंग है। यह मुख्यतया "फार्मेन्टस" की स्थिति पर निर्भर करता है। ये किसी निश्चित फ्रिक्वेन्सी पर ध्वनि शक्ति का संकेन्द्रण हैं। ऐसा कहा जाता है कि फ्रिक्वेन्सी (आवृत्ति) के क्षेत्र में इनकी स्थिति प्रत्येक वक्ता के सम्बन्ध में अलग अलग होती है। वाणी अभिलेखन

1. ऊपर अध्याय।
2. परिशिष्ट 1 देखिए।
3. स्टेट आफ यू० पी० बनाम राम बाबू मिश्र (1980) 2 एस० सी० सी० 341, पैरा 8 (1 मई 1980)।
4. जोर डालने के लिए मोटे शब्द।
5. आगे पैरा 5.32।
6. एलैक "आइडेन्टिफिकेशन एविडेन्स" (1975) 125 न्यू एव० ज० 1146, 1147।
7. बैनेट सैन्डलर, ला इन्फोर्समेन्ट एण्ड क्रिमिनल जस्टिस (1979), पृष्ठ 303।
8. वेनेट सैण्डलर, ला इन्फोर्समेन्ट एण्ड क्रिमिनल जस्टिस (1979), संख्यांक 9-7 के नीचे का टिप्पण।

(वायस प्रिन्ट) इस अर्थ में अंगुलि-चिह्न के सदृश्य है कि प्रत्येक व्यक्ति की आवाज निकालने के छिद्रों और उच्चारण के विशेष लक्षणों के कारण भिन्न भिन्न होती है ।[1]

वाणी अभिलेखन (वायस प्रिन्ट) से शनाख्त किए जाने के अनेक व्यावहारिक उपयोग हैं । इंगलैण्ड में नवम्बर 1967 में एक पुरुष दूरभाष से द्वेषपूर्ण बात करने के आरोप में विनचेस्टर मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अभियुक्त था । वाणी अभिलेखन (स्पेक्ट्रोग्राफ) का उपयोग किया गया और अभियुक्त दोषी पाया गया ।[2]

अन्यत्र भी आवाज से शनाख्त करने का तरीका अपनाया गया है ।[3]

धारा 5 के विस्तार को बढ़ाने के आवश्यकता ।

5.28. इस वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से अधिनियम द्वारा मंजूर किए गए प्रपीड़न के उपायों का विस्तार करना उपयोगी हो सकता है । यद्यपि इस प्रकार शनाख्त करने की आवश्यकता कभी कभी ही होगी फिर भी ऐसा उपबन्ध बहुत उपयोगी होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं कि गिरफ्तार किये गए व्यक्ति से कुछ शब्द बोलने या कुछ आवाज निकालने की अपेक्षा करने के उपबन्ध को प्रत्यक्षतः प्रवृत्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यदि सम्बद्ध व्यक्ति ऐसा करने से इन्कार करता है तो उसे बोलने के लिए शारीरिक रूप से बाध्य करना सम्भव नहीं है । किन्तु विनिर्दिष्ट कार्य करने से इन्कार करने वाले व्यक्ति पर शास्ति अधिरोपित करने के लिए जो अप्रत्यक्ष मंजूरी प्राप्त है (धारा 6 से तुलना कीजिए) वह इन्कार करने वाले व्यक्ति पर अधिरोपित की जा सकती है ।

यदि उपर्युक्त दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाता है तो इस उद्देश्य की पूर्ति धारा 5 में समुचित स्थान पर यथोचित शब्दों को जोड़ करके की जा सकती है ।[4]

VII. मजिस्ट्रेट के आदेश के कारणों का अभिलिखित किया जाना ।

धारा 5 के अधीन निदेश देने के कारण ।

5.29. अभी तक हमने धारा 5 के बारे में केवल मूल प्रकृति के उन प्रश्नों पर विचार विमर्श किया है जिनका मुख्यतया सम्बन्ध इस धारा के विस्तार से है । अब प्रक्रिया सम्बन्धी विषयों पर विचार करना आवश्यक है । इस समय यह धारा जिस रूप में है उसके अनुसार मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह इस धारा के अधीन अपने द्वारा दिए गये निदेश के कारणों को बताए[5] । हमें ऐसा प्रतीत होता है अनेक महत्वपूर्ण बातों के कारण मजिस्ट्रेट से ऐसी अपेक्षा करने के उपबन्ध को अन्तःस्थापित करना न्यायोचित है ।

पहली बात यह है कि यह धारा "किसी व्यक्ति" को लागू होती है, यद्यपि परन्तुक के अधीन यह आवश्यक है कि ऐसा व्यक्ति किसी प्रक्रम पर गिरफ्तार किया गया होना चाहिए । इस प्रकार इस धारा का विस्तार काफी व्यापक है । दूसरी बात यह है कि यह धारा संहिता के अधीन "किसी अन्वेषण या कार्यवाही" के प्रयोजन के लिए निदेश देने का प्राधिकार प्रदान करती है । इससे भी यह दर्शित होता है कि इस धारा का विस्तार कितना अधिक है । तीसरी बात यह है कि इस धारा के अधीन जिस प्रकार की कार्रवाई करने का निदेश दिया जा सकता है उस कार्रवाई से शारीरिक सुरक्षा में हस्तक्षेप हो सकता है और इन्कार के लिए दाण्डिक शास्तियाँ अधिरोपित की जा सकती हैं[6] । अतः औचित्य के आधार पर यह अपेक्षित है कि ऐसे निदेश के कारण बताए जाने चाहिए ।

इसके अलावा यह बात भी है कि अब उच्चतम न्यायालय ने "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" (अनुच्छेद 21) के निर्वचन में जो अभिवृद्धि की है[7] उनकी अनवेक्षा नहीं की जा सकती । इस अभिवृद्धि की दृष्टि से ऊपर सुझाए गए रक्षोपाय को सम्मिलित करना वांछनीय है । इन सब कारणों से हम इस अध्याय में आगे धारा 5 के जिस पुनःप्ररूपित रूप की सिफारिश कर रहे हैं उसमें इस संशोधन को सम्मिलित कर ले रहे हैं ।[8]

---

1. बैनैट सैण्डलर, "ला इन्फोर्समेन्ट एण्ड क्रिमिनल जस्टिस" (1979) पृष्ठ 303-304 ।
2. टामस मैकडाडे, "दि वायस-प्रिन्ट" (1970 जुलाई), इंडियन पुलिस जनरल, पृष्ठ 26-34 ।
3. परिशिष्ट देखिए ।
4. आगे पैरा 5.32 देखिए ।
5. जे० इ० गुब्बरे बनाम एम्परर, ए० आई० आर० 1936 कलकत्ता, 65, 67 ।
6. धारा 6 ।
7. परिशिष्ट 3 देखिए ।
8. आगे पैरा 5.32 ।

VIII. धारा 5 और धारा 73 के बीच अतिव्याप्ति

5.30. ऊपर सुझाए गए संशोधनों से धारा 5 का विस्तार तो बढ़ जाएगा किन्तु एक मुद्दा ऐसा है जिसके बारे में इस धारा के विस्तार को निर्बन्धित करना आवश्यक हो सकता है। यह कुछ हद तक उस अतिव्याप्ति को दूर करने के लिए आवश्यक है जो 1920 के अधिनियम की धारा 20 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के बीच विद्यमान है। यदि अपराध का विचारण करने के अनुक्रम में कार्य करने वाले मजिस्ट्रेट का उदाहरण लें तो यह अतिव्याप्ति प्रकट हो जाएगी। मजिस्ट्रेट विचारण के प्रक्रम पर सम्बद्ध व्यक्ति से न केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन बल्कि 1920 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन भी अपने अंगुलि-चिन्ह के नमूने देने की अपेक्षा कर सकता है[1]। धारा 5 इतनी व्यापक है कि वह विचारण के प्रक्रम को भी लागू होती है क्योंकि यह संहिता के अधीन प्रत्येक "कार्यवाही" को लागू होती है। इस प्रकार इन दोनों धाराओं के बीच अतिव्याप्ति है। 1920 के अधिनियम की धारा 5 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के बीच अतिव्याप्ति।

जहां तक धारा 73 का सम्बन्ध है इसके विस्तार को साक्ष्य अधिनियम के बारे में विधि आयोग की सिफारिशें[2] क्रियान्वित करने के पश्चात् कुछ हद तक अच्छी तरह परिनिश्चित किया जा सकता है। विधि आयोग ने जिस रूप में स्पष्टीकरण के लिए सिफारिश की है उसके अनुसार धारा 73 न्यायालय को तभी लागू होती है जब वह किसी अपराध का संज्ञान कर लेता है। इस हद तक यह अतिव्याप्ति कम हो जाएगी।[3]

किन्तु धारा 5 (जब तक कि इसका यथोचित संशोधन नहीं कर लिया जाता है तब तक) अन्य बातों के साथ साथ इस प्रक्रम को लागू होती है जो मजिस्ट्रेट द्वारा किसी अपराध का संज्ञान कर लेने के पश्चात् हो और इस हद तक अतिव्याप्ति रहेगी। यह बताने के लिए अधिक तर्क देना आवश्यक नहीं है कि इस विषय में अधिकारिता के सम्बन्ध में ऐसी अतिव्याप्ति न केवल अनावश्यक है बल्कि भ्रमोत्पादक भी है। उदाहरण के लिए, धारा 5 के लिए कुछ रक्षोपाय किए गए हैं, जब कि धारा 73 के लिए ऐसा कुछ भी नहीं किया गया है। अतः यह प्रश्न कि किसी विशिष्ट मामले में रक्षोपायों का अनुपालन किया जाना चाहिए या नहीं उस कानूनी उपबन्ध पर निर्भर करेगा जो अपनाया जाए। इससे बचना चाहिए।

5.31. यह ध्यान देने की बात है कि धारा 5 अंगुलि-चिन्हों को लागू होती है और (प्रस्तावित संशोधन के पश्चात्) हस्ताक्षर को भी लागू होगी[4]। ये दोनों बातें विचारण के प्रक्रम पर धारा 73 के भी अन्तर्गत हैं। इस प्रकार से यह अतिव्याप्ति होती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अन्तर्गत आने वाले मामलों को अपवर्जित करने के लिए संशोधन।

इस अतिव्याप्ति को दूर करने के लिए धारा 5 में एक उपबन्ध यह सुनिश्चित करने के लिए अन्तःस्थापित करना आवश्यक है कि यह धारा ऐसी किसी कार्रवाई के सम्बन्ध में लागू नहीं होती है जो न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन करने के लिए सक्षम है।[5]

IX. धारा 5 के बारे में सिफारिश

5.32. ऊपर जो विचार-विमर्श किया गया है उसे ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 5 का पुनरीक्षण निम्नलिखित रूप में किया जाना चाहिए :— धारा 5 का पुनरीक्षण करने की सिफारिश।

पुनरीक्षित धारा 5

"(1) यदि किसी मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन किसी अन्वेषण या कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए यह समीचीन है कि किसी व्यक्ति को यह निदेश दिया जाए कि वह—

(क) अपनी नाप या फोटोग्राफी लेने दे, या

---

1. (क) सुपरिंटेन्डेन्ट एण्ड रिमेम्बरेन्सर आफ लीगल अफेयर्स बनाम किरण बाला, ए० आई० आर० 1928 पटना, 103।
   (ख) *जाहरी बनाम एम्परर, ए० आई० आर० 1928 पटना 103।
2. भारत का विधि आयोग, उन्हत्तरवीं, रिपोर्ट, पैरा 33.40।
3. ऊपर पैरा 3.20 देखिए।
4. आगे पैरा 5.32 और ऊपर पैरा 5.23।
5. आगे पैरा 5.32।

(ख) अपने हस्ताक्षर या हस्तलेख के नमूने दे, या

(ग) विनिर्दिष्ट शब्दों को बोल करके या विनिर्दिष्ट ध्वनि उत्पन्न करके अपनी आवाज के नमूने दें,

तो वह मजिस्ट्रेट उस आशय का आदेश उन कारणों को, जो वैसा आदेश करने के लिए उसके पास हो, अभिलिखित करके दे सकेगा ।

(2) वह व्यक्ति, जिससे उक्त आदेश का सम्बन्ध है ---

(क) आदेश में विनिर्दिष्ट समय और स्थान पर पेश किया जाएगा या हाजिर होगा, और

(ख) पुलिस अधिकारी को अपनी नाप या फोटोग्राफ लेने देगा या मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसरण में पुलिस अधिकारी के समक्ष, यथास्थिति, अपने हस्ताक्षर या लेखन के नमूने या अपनी आवाज के नमूने देगा ।

(3) कोई आदेश, जिसमें किसी व्यक्ति को यह निदेश दिया गया हो कि उसका फोटोग्राफ लिया जाए, महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग के मजिस्ट्रेट द्वारा ही किया जायेगा, किसी अन्य द्वारा नहीं ।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि वह व्यक्ति ऐसे अन्वेषण या कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी समय गिरफ्तार न किया गया हो ।

(5) जहां न्यायालय ने अपराध का संज्ञान कर लिया है वहां मजिस्ट्रेट अपराध के लिये अभियुक्त व्यक्ति को इस धारा के अधीन ऐसा कोई निदेश नहीं देगा जो उस मजिस्ट्रेट द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 73 के अधीन दिया जा सकता हो ।"

अध्याय 6

आनुषंगिक उपबन्ध—धारा 6 से धारा 9 तक

6. 1. यहां तक हमने इस अधिनियम के प्रवर्तनशील उपबन्धों पर विचार किया है और अब हम इसके आनुषंगिक उपबन्धों पर विचार करेंगे। इस उपबन्धों में से धारा 6 सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें नाप या फोटोग्राफ लेने का प्रतिरोध किए जाने पर कुछ कार्रवाइयां करने की मंजूरी दी गई है। उपधारा (1) के अधीन ऐसे सब उपायों को प्रयोग में लाना वैध होगा जो नाप या फोटोग्राफ लेने के लिए आवश्यक हों। इस उपधारा के अधीन नाप या फोटोग्राफ लेने का प्रतिरोध करना या इन्कार करना, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 186 के अधीन अपराध (लोक सेवक के लोक कृत्यों के निर्वहन में स्वैच्छया बाधा डालना) समझा जाता है।

धारा 6 (1)—आवश्यक उपाय—द्वारा उठाए गए प्रश्न।

6. 2. धारा 6.2 में इस आशय के उपबन्ध से कि "उन सभी उपायों को प्रयोग में लाना वैध होगा जो उस नाप या फोटोग्राफ को लेने के लिए आवश्यक हों", एक रुचिकर प्रश्न उत्पन्न उठता है, अर्थात् यह प्रश्न उठता है कि ऐसे "आवश्यक उपायों" को प्रयोग में लाने वाला व्यक्ति कहां तक इन उपायों का प्रयोग कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए किस सीमा तक बल का प्रयोग कर सकता है ?

यह उपधारा दण्ड प्रक्रिया संहिता में गिरफ्तार करने से सम्बन्धित उपबन्ध के माडैल पर बनायी गई है।[1] उस संहिता के अधीन यदि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति गिरफ्तार किए जाने के प्रयास का बलात् प्रतिरोध करता है तो उसे गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति "गिरफ्तार करने के लिए सभी आवश्यक साधनों को उपयोग में ला सकता है।" किन्तु उस संहिता में आगे यह भी उपबन्ध है कि धारा की कोई बात ऐसे व्यक्ति की, जिस पर मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध का अभियोग नहीं है, मृत्यु कारित करने का अधिकार नहीं देती है।

शनाख्त के लिए उपायों के इस संदर्भ में इस अधिकार को इस रूप में सीमित करने की आवश्यकता प्रकटतया नहीं समझी गई क्योंकि यह सोचा ही नहीं जा सकता है कि "नाप" लेने वाला व्यक्ति मृत्यु या गम्भीर शारीरिक क्षति करने की भी हद तक जा सकता है।

हम धारा 6(1) को ज्यों का त्यों रहने देंगे क्योंकि अभी तक इसके बारे में कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं हुई है।

धारा 6 (2) में परिवर्तन की आवश्यकता।

6. 3. हमने इस अधिनियम की धारा 5 में जो संशोधन करने की सिफारिश की है[2] उसे ध्यान में रखते हुए धारा 6(2) में कुछ पारिणामिक परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी जिससे कि हस्ताक्षर या आवाज के नमूने देने से इन्कार को दण्डित किया जा सके।

धारा 6 को पुनः प्रारूपित करने का सुझाव।

6. 4. तद्नुसार हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 6 का पुनरीक्षण निम्नलिखित रूप में किया जाना चाहिए:—

पुनरीक्षित धारा 6

"6. **नाप आदि लिए जाने का प्रतिरोध**—(1) यदि कोई व्यक्ति, जिससे इस अधिनियम के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी नाप या फोटोग्राफ लेने दे, उसका प्रतिरोध करेगा या उससे इन्कार करेगा[3] तो उन सभी साधनों को प्रयोग में लाना वैध होगा जो उस नाप या फोटोग्राफ को लेने के लिए आवश्यक हों।

(2) **इस अधिनियम के अधीन** नाप या फोटोग्राफ लेने का प्रतिरोध करना या उससे इन्कार करना **अथवा हस्ताक्षर या लेखन के नमूने देने या आवाज के नमूने देने से इन्कार करना** भारतीय दण्ड संहिता की धारा 186 के अधीन अपराध समझा जाएगा।"

---

1. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 46 (2) और (3)।
2. ऊपर पैरा 5.32।
3. उपधारा (1) में हस्ताक्षर लेने की बात को जोड़ना अनावश्यक है।

धारा 7 ।

6.5. धारा 7 में यह उपबन्ध है कि यदि कोई व्यक्ति दोषमुक्त कर दिया जाता है तो उसके लिए गए फोटोग्राफ और नाप के अभिलेख नष्ट कर दिये जाएंगे किन्तु तब नहीं जब कि वह एक वर्ष या उससे अधिक-अधिक की अवधि के कठिन कारावास से दण्डनीय किसी अपराध से पहले ही दोषसिद्ध किया गया हो।

धारा 7 का पुनरीक्षण किया जाना ।

6.6. हमने धारा 5 में जिन परिवर्तनों के लिए सिफारिश की है[1] उन्हें ध्यान में रखते हुए धारा 7 का भी विस्तार करना आवश्यक होगा जिससे कि उसमें हस्ताक्षर या लेखन या आवाज के नमूनों को नष्ट किए जाने का उपबन्ध किया जाए। तद्नुसार हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7 का पुन. प्रारूपण निम्नलिखित रूप में किया जाना चाहिए :—

पुनरीक्षित धारा 7

"7. **दोषमुक्त होने पर फोटोग्राफ और नाप के अभिलेखों का नष्ट किया जाना**—जहां किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कठिन कारावास से दण्डनीय किसी अपराध से तत्पूर्व दोषसिद्ध नहीं किया गया है—

(क) इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार अपनी नाप या फोटोग्राफ लेने दी है अथवा **हस्ताक्षर या लेखन का कोई नमूना या अपनी आवाज का कोई नमूना दिया है,**

(ख) और किसी न्यायालय द्वारा बिना विचारण के छोड़ दिया जाता है या उन्मोचित या दोषमुक्त कर दिया जाता है,

वहां इस प्रकार ली गई सभी नापें और सभी फोटोग्राफ (नेगेटिव और उसकी प्रतियां दोनों ही) और **इस प्रकार किए गए हस्ताक्षर तथा लेखन** के सभी नमूने या आवाज के सभी नमूने, जब तक वह न्यायालय अथवा (उस दशा में जब कि वह व्यक्ति बिना विचारण के छोड़ दिया जाता है) जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड अधिकारी ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किये जाएंगे, अन्यथा निदेश न दे, नष्ट कर दिए जाएंगे या उसे दे दिए जाएंगे।"

धारा 8 ।

6.7. धारा 8 राज्य सरकार को इस बात के लिए सशक्त करती है कि वह इस अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकती है। इसके अन्तर्गत विशिष्ट रूप से कुछ ऐसे विषय हैं जिनमें से अधिकांश का सम्बन्ध धारा 3 से लेकर धारा 7 तक के अधीन की जाने वाली कार्रवाई से है।

पुनरीक्षित धारा 8 ।

6.8. हमने धारा 5 में जिन संशोधनों के लिए सिफारिश की है उन्हें ध्यान में रखते हुए इस धारा में पारिणामिक परिवर्तन करने आवश्यक होंगे। इसके अतिरिक्त इस धारा में यह उपबन्ध इसी अवसर पर किया जा सकता है कि इस धारा के अधीन नियम राजपत्र में प्रकाशित की जाने वाली अधिसूचना के माध्यम से बनाए जाने चाहिएं। तद्नुसार हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 8 का पुनरीक्षण लिखित रूप में किया जाना चाहिए :—

पुनरीक्षित धारा 8

"8. **नियम बनानेकी शक्ति**—(1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम, **राजपत्र में अधिसूचना द्वारा,** बना सकेगी।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी उपबन्धों की व्यापकता पर प्रभाव डाले बिना इन नियमों में निम्नलिखित का उपबन्ध किया जा सकेगा :—

(क) धारा 5 के अधीन व्यक्तियों के फोटोग्राफ लेने पर प्रतिबन्ध,

(ख) वे स्थान जहां नाप और फोटोग्राफ लिये जा सकेंगे **या किसी व्यक्ति से इस अधिनियम के अधीन हस्ताक्षर या लेखन के नमूने या अपनी आवाज के नमूने देने की अपेक्षा की जा सकेगी,**

1. ऊपर पैरा 5.32 देखिए।

(ग) इस अधिनियम के अधीन किस प्रकार की नाप ली जा सकेगी,

(घ) वह पद्धति जिससे इस अधिनियम के अधीन किसी वर्ग या किन्हीं वर्गों की नाप ली जाएगी,

(ङ) धारा 3 के अधीन फोटोग्राफ लिए जाने के समय व्यक्ति द्वारा पहनी जाने वाली पोशाक, और

(च) इस अधिनियम के अधीन लिये गये नाप और फोटोग्राफ तथा हस्ताक्षर और लेखन के नमूनों या आवाज के नमूनों के अभिलेखों का परिरक्षण, निरापद अभिरक्षा, नाशकरण, और व्ययन।"

6.9. धारा 9 में इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के बारे में किसी किए जाने वाले वादों या कार्यवाहियों को वर्जित करने का साधारण उपबन्ध है। यह उपबन्ध सामान्य पैटर्न के अनुसार है। अतः इसकी विशेष रूप से समीक्षा करना आवश्यक नहीं है।

अध्याय 7

सिफारिशों का संक्षेप

हम इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को संक्षेप में नीचे दे रहे हैं :—

अध्याय 4—प्रारम्भिक बातें

(1) रिपोर्ट में जैसी सिफारिश की गई है उसके अनुसार बन्दी शनाख्त अधिनियम, 1920 के संक्षिप्त नाम का संशोधन करना चाहिए।[1]

(2) इस अधिनियम की धारा 1(2) का संशोधन इस तरह से किया जाना चाहिए जिससे कि इस अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर हो।[2]

(3) धारा 2(क) में "नाप" की जो परिभाषा दी गई है उसमें हथेली के छाप को भी जोड़ देना चाहिए।[3]

(4) धारा 2(ख) में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के प्रति जो वर्तमान निर्देश है उसके स्थान पर दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रति निर्देश किया जाना चाहिए।[4]

अध्याय 5—नाप, अंगुलि-चिह्न और फोटोग्राफ का लिया जाना—धारा 3 से धारा 5 तक

(5) धारा 3 में अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 19 के अधीन अपराध को जोड़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इसी धारा के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति को भी रखना चाहिए जिसके बारे में अनिष्टकर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930 की धारा 18 के अधीन आदेश किए गए हैं।[5]

(6) धारा 3(ख) में 1898 की संहिता के प्रति निर्देश के स्थान पर 1973 की संहिता के प्रति निर्देश किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, "यदि उससे वसी अपेक्षा की जाए तो" शब्दों के स्थान पर "यदि किसी पुलिस अधिकारी द्वारा उससे वैसी अपेक्षा की जाए तो" शब्द यथार्तता की दृष्टि से रखने चाहिए।[6]

(7) धारा 4 का संशोधन इस तरह से किया जाना चाहिए जिससे कि (अधिनियम में यथापरिभाषित) पुलिस अधिकारी को उन व्यक्तियों के, जिन्हें यह धारा लागू होती है, फोटोग्राफ लेने के लिए सशक्त किया जाए।[7]

(8) धारा 4 का और भी संशोधन इस दृष्टि से किया जाना चाहिए जिससे कि इस धारा के अन्तर्गत ऐसे कुछ अन्य व्यक्तियों के शनाख्त के आंकड़े लिए जाएं जिनका उल्लेख रिपोर्ट[7] में किया गया है और जिन्हें यथाविनिर्दिष्ट विभिन्न कानूनी उपबन्धों के अधीन गिरफ्तार किया गया है।

(9) धारा 5 का संशोधन विनिर्दिष्ट रूप से इस शक्ति का (जो प्राधिकारियों द्वारा प्रयोक्तव्य होगी और विद्यमान धारा में दिए गए रक्षोपायों के अध्यधीन होगी) उपबन्ध करने के लिए किया जाना चाहिए कि धारा में उल्लिखित व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाए कि वे—

---

1. पैरा 4.1।
2. पैरा 4.8।
3. पैरा 4.10।
4. पैरा 4.10।
5. पैरे 5.13, 5.14 और 5.16।
6. पैरे 5.15 और 5.16 तक।
7. पैरे 5.17 से 5.19 तक।

(क) अपने हस्ताक्षर या लेखन के नमूने दें,[1]

(ख) अपनी आवाज के नमने दें।[2]

(10) मजिस्ट्रेट के द्वारा धारा 5 के अधीन दिए गए निदेश के लिए कारण बताए जाने चाहिए।[3]

(11) 1920 के अधिनियम की धारा 5 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के बीच अतिव्याप्ति को दूर करना चाहिए और यह धारा 5 के विस्तार में से उस मामले को निकाल कर किया जाना चाहिए जिनमें न्यायालय धारा 73 के अधीन कार्य कर सकता है।[4]

अध्याय 6—अनुषंगिक उपलब्ध : धारा 6 से धारा 9 तक

(12) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों में जिन संशोधनों के लिए सिफारिश की गई है उन्हें ध्यान में रखते हुए धारा 6 में भी पारिणामिक परिवर्तन करने के लिए उसका संशोधन करना चाहिए।[5]

(13) धारा 5 में जिन संशोधनों के लिए सिफारिश की गई है उनके परिणामस्वरूप धारा 7 का पुनरीक्षण करना चाहिए।[6]

(14) धारा 5 में जिन संशोधनों के लिए सिफारिश की गई है उन्हें ध्यान में रखते हुए पारिणामिक परिवर्तन करने के लिए धारा 8 का भी संशोधन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इस धारा में यह उपबन्ध करना चाहिए कि इस धारा के अधीन नियम राजपत्र में प्रकाशित की जाने वाली अधिसूचना के माध्यम से बनाए जाएंगे।[7]

पी० वी० दीक्षित	हस्ता० 27-8-80 अध्यक्ष
एस० एन० शंकर	हस्ता० 27-8-80 सदस्य
गगेश्वर प्रसाद	हस्ता० 27-8-80 सदस्य
हस्ता० पी० एम० बख्शी	सदस्य-सचिव

27 अगस्त, 1980

1. पैरे 5.21 से 5.25 तक और 5.32।
2. पैरे 5.26 से 5.28 तक और 5.32।
3. पैरे 5.29 और 5.32।
4. पैरे 5.30, 5.37 और 5.32।
5. पैरे 6.3 और 6.4।
6. पैरा 6.6।
7. पैरा 6.8।

परिशिष्ट 1

अंगुलि-चिह्न और नाप के सम्बन्ध में इंग्लिश विधि

I. कामन लॉ

शरीर की तलाशी।

गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की तलाशी लेने के लिए कामन ला में कोई साधारण अधिकार नहीं है।[1] किन्तु ऐसी तलाशी उन हथियारों के लिए जो वह व्यक्ति अपने पास रखे हुए हो या ऐसे साक्ष्य के लिए ली जा सकती है जो उसके कब्जे में हो और जो उस अपराध के बारे में महत्वपूर्ण हो जिसका किया जाना अभिकथित है[2-3]।

इंग्लैंड में बैटरी के बारे में स्थिति।

यद्यपि इंग्लिश विधि में ऐसा कोई प्रमाण नहीं है किन्तु यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि साक्ष्य अभिप्राप्त करने के प्रयोजन के लिए किसी विरुद्ध व्यक्ति के शरीर पर बल का प्रयोग किया जाना वादयोग्य अपकृत्य है, किन्तु तब नहीं जब कि इसकी मंजूरी देने के लिए कानूनी प्राधिकार कोई विनिर्दिष्ट नियम हो।

गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों की तलाशी लेने के लिए कामन ला में शक्ति है (पुलिस ने यह प्राख्यान करने का प्रयास नहीं किया है कि इस शक्ति का विस्तार शरीर की ऐसी तलाशी लेने के लिए भी है जो कपड़ों या बाह्य वस्तुओं की तलाशी लेने से भिन्न है)[4]। किन्तु अन्य दशाओं में बल-प्रयोग करने के लिए कानूनी प्राधिकार होना अपेक्षित है।

इंगलैण्ड में पुलिस को कामन ला में किसी अभियुक्त के अंगुलि-चिह्न उसकी सहमति के बिना लेने का कोई अधिकार नहीं है[5]। यह समहति अवश्य ही स्वतंत्र रूप में होनी चाहिए[6]।

स्काट एल० जे० ने कानूनी प्राधिकार के बिना अंगुलि-चिह्न का लिया जाना निर्दोषिता की उपधारणा से असंगत माना है, जब तक कि दोष का सबूत न हो और (यदि तलाशी के पश्चात् गिरफ्तारी की गई है तो) उसे मिथ्या कारावास का तत्व माना है[7]।

1933 में स्काटिश जस्टिशरी अपील कोर्ट ने[8] बहुमत के निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया था कि अंगुलि-चिह्न का लिया जाना स्काटलैण्ड में प्रजाजन के कामन ला-अधिकार का अतिक्रमण नहीं है। किन्तु इंग्लिश विधि इससे भिन्न प्रतीत होती है। उपर्युक्त मामले में लार्ड हन्टर ने अपनी विसम्मति प्रकट करने वाले निर्णय में यह बात कहीं थी।

एक समकालीन लेख में[9] इस स्काटिश मामले की इस प्रकार समीक्षा की गई थी "ऐसा प्रतीत होता है कि इंगलैण्ड के न्यायिक विनिश्चयों की रिपोर्टों में बलपूर्वक अंगुलि-चिह्न लिए जाने का विषय नहीं है। किन्तु ऐसे (अंगुलि-चिह्न) लेने की जिम्मेदारी जिन लोगों पर है उनके लिए यह बुद्धिमानी का कार्य होगा कि वे इस विषय से सम्बन्धित नियमों की जानकारी प्राप्त करें और यह देखें कि ऐसे (विनियमों) का कड़ाई से पालन किया जा रहा है।"

---

1. रिपोर्ट का अध्याय 1 भी देखिए।
2. **वैसेल** बनाम **विल्सन** (1853), ला टाइम्स ओल्ड सीरीज 233।
3. बाल्सबरी, चतुर्थ संस्करण, खण्ड 11, पृष्ठ 85, पैरा 121।
4. ग्लैनविले एल० विलिइम्स, दि प्रिविलेज अगेन्स्ट सेल्फ इन्क्रीमिनेशन : एन इन्टरनैशनल सिम्पोजियम (इंग्लैंड) (1961) 51 जनरल आफ क्रिमिनल ला, क्रिमिनालोजी एण्ड पुलिस साइन्स 166, 169।
5. **लैंसचिन्सकी** बनाम **क्रिटी** (1946) कै० बी० 124, 142 (स्काट एल० जे०)।
6. **डमबैल** बनाम **राबर्ट्स** (1944) 1 आल० ई० आर० 326, 330 (सी०ए०) (स्काट लै० जे० के मतानुसार)।
7. **डमबैल** बनाम **राबर्ट्स** (1944) 1 आल इ० आर० 326, 330।
8. भारत के विधि आयोग की उनहत्तरवीं रिपोर्ट देखिए।
9. जस्टिस आफ पीस में नोट जिसे (1933) 34 क्रिमिनल ला जनरल, 71, 73 में उद्धृत किया गया है।
0. मजिस्ट्रेटस कोर्ट्स ऐक्ट, 1952 की धारा 40 (1)।

II. अंगुलि-चिह्न के बारे में वर्तमान कानूनी उपबन्ध

इंगलैंड में अंगुलि-चिह्न के बारे में स्थिति ।

इंग्लैण्ड में अंगुलि-चिह्न के बारे में अब स्थिति यह है कि इसके लिए कानूनी उपबन्ध होते हैं। मजिस्ट्रेट अभियुक्त के अंगुलि-चिह्न और उसकी हथेली के छाप[1] लेने का आदेश ऐसे मामले में, जिसमें अभियुक्त पर संक्षेपत: विचारणीय अपराध या अभ्यारोपणीय अपराध का आरोप लगाया गया हो, उस दशा में कर सकता है जब कि ऐसे आदेश के लिए आवेदन ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाए जो निरीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति का न हो। किन्तु इस शक्ति का प्रयोग चौदह वर्ष से कम आयु के अभियुक्त के बारे में नहीं किया जा सकता[2-3]।

बल प्रयोग ।

अंगुलि-चिह्न लेने के प्रयोजन के लिए उतना ही उचित बल-प्रयोग किया जा सकता है जितना कि आवश्यक हो। अंगुलि-चिह्न उस स्थान पर लिए जा सकते हैं जहां पर मजिस्ट्रेट अपनी बैठकें करता है या जहां पर सम्बद्ध व्यक्ति अभिरक्षा या प्रतिप्रेषण (रिमाण्ड) के लिए सुपुर्द किया गया है।

केवल उस व्यक्ति के अंगुलि-चिह्न लिए जा सकते हैं "जिसे अभिरक्षा में लिया गया है और जिस पर अपराध का आरोप मजिस्ट्रेट के समक्ष लगया जाता है[4]।"

किन्तु किसी ऐसे व्यक्ति से भी ऐसे अंगुलि-चिह्न लिए जा सकते हैं जो किसी कानूनी उपबन्ध के आधार पर कारावास से दण्डनीय किसी अपराध के लिए समन के जवाब में मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष हाजिर होता है[5]।

यदि इत्तिला खारिज कर दी जाती है या यदि जांच करने वाले न्यायमूर्ति अभियुक्त को विचारण के लिए सुपुर्द नहीं करते हैं या यदि वह दोषमुक्त कर दिया जाता है तो उसके अंगुलि-चिह्नों और उनकी प्रतियों तथा अभिलेखों को अवश्य नष्ट कर दिया जाएगा[6]।

इंगलैण्ड में ऊपर वर्णित उपबन्धों के अतिरिक्त ऐसे कानूनी विनियम प्रवृत्त हैं जो इस विषय से सुसंगत हैं[7]। प्रिज़न ऐक्ट के अधीन सैक्रेटरी आफ स्टेट बंदियों की नाप और फोटोग्राफ लेने के लिए विनियम बना सकता है[8]।

यह उपबन्ध रिमाण्ड केन्द्रों, निरोध केन्द्रों और बोस्टल संस्थाओं तथा उनमें निरुद्ध किए गए व्यक्तियों को भी लागू होता है। ऐसे विनियम 1896 में तत्समान पूर्वत्तर विधान के अधीन बनाए गए थे और प्रिज़न ऐक्ट द्वारा उन्हें प्रवृत्त किया जा रहा है[9-10]।

आपराधिक बन्दी का फोटोग्राफ और नाम कारावास के दौरान किसी समय भी या तो बन्दी की पोशाक में या किसी ऐसे अन्य पोशाक में, जो उसके जीवन में स्थिति के उपयुक्त हो, ली जा सकती है। "नाप" के अन्तर्गत प्रत्येक हाथ की अंगुलियों और अंगूठे के बाहरी हिस्सों का स्याही से छाप लेना भी है।

फोटोग्राफ ।

जिस बन्दी का विचारण नहीं किया गया है उसका भी कारावास में फोटोग्राफ और नाप सैक्रेटरी आफ स्टेट के आदेश से या ऐसे पुलिस अधिकारी के आवेदन पर ली जा सकती है जो अधीक्षक की पंक्ति के नीचे की पंक्ति का न हो। ऐसे आवेदन की पुष्टि मजिस्ट्रेट द्वारा या (महानगरीय क्षेत्र में) पुलिस आयुक्त या सहायक पुलिस आयुक्त द्वारा अवश्य की जानी चाहिए। आवेदन में यह अवश्य बताना चाहिए कि बन्दी पर जिस अपराध का आरोप लगाया गया है उस अपराध की प्रकृति के कारण या अन्य कारणों से यह सन्देह करने के आधार हैं कि बन्दी को पहले भी

---

1. क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट, 1967 की धारा 33।
2. चिल्ड्रेन एण्ड यंग पर्सनल ऐक्ट, 1967 की धारा 8 के साथ पठित मजिस्ट्रेट्स कोर्ट्स ऐक्ट की धारा 40 (1)।
3. मोरियारटी, पुलिस ला (1976), पृष्ठ 16।
4. मजिस्ट्रेट्स कोर्ट्स ऐक्ट, 1952 की धारा 40 (2)।
5. क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट, 1967 की धारा 33।
6. मजिस्ट्रेट्स कोर्टस ऐक्ट, 1952 की धारा 40 (4)।
7. स्टोन का जस्टिसेज मैन्युअल (1970), खण्ड]2, पृष्ठ 2636-2637। खण्ड 1 भी, पृष्ठ 455।
8. प्रिजन ऐक्ट, 1952 की धारा 16 और धारा 43।
9. स्टोन का "जस्टिसेज मैन्युअल" (1970), खण्ड 2 पृष्ठ 2636-2637।
10. हाल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 30, पृष्ठ 591, पैरा 1131 देखिए।

दोषसिद्ध किया गया है या वह अपराध के काम में लगा हुआ था या किसी अन्य हेतुक[1] से उसका फोटोग्राफ और नाप का लिया जाना न्याय के प्रयोजनों के लिए अपेक्षित है।[2]

इंगलैण्ड में दोषमुक्ति आदि हो जाने पर फोटोग्राफों और नापों को नष्ट करने या लौटाए जाने के लिए उपबन्ध उस दशा में हैं जब कि सम्बद्ध व्यक्ति ऐसा बन्दी है जिसका विचारण नहीं किया गया है और वह पहले कभी अपराध से पहले दोषसिद्ध नहीं किया गया है। ये उपबन्ध इस बात के लिए भी समर्थ करते हैं कि बन्दी के अंगुलि-चिह्नों की तुलना ऐसे अन्य चिह्नों से की जाए जो अभियोजन पक्ष के कब्जे में हैं।

शनाख्त परेड में हाजिर होने की बाध्यता।

यूनाइटेड किंगडम की शनाख्त साक्ष्य से सम्बन्धित समिति (यू० के० कमिटी आन आइडेन्टीफिकेशन एविडेन्स) ने कहा है कि[3]—

"प्रथम और सबसे अधिक स्पष्ट मामला वह है जिसमें अभियुक्त परेड में हाजिर होने से इन्कार करता है। हमने इस बात पर ध्यान दिया है कि संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ भागों में "अभी हाल के वर्षों में यह प्रवृत्ति चल पड़ी है कि न्यायालय के आदेश का उपयोग ऐसे संदिग्ध व्यक्ति को, जो पहले से अभिरक्षा में नहीं है, शनाख्त के परेड में हाजिर होने के लिए बाध्य करने में किया जाए। किन्तु इस देश (यूनाइटेड किंगडम) में ऐसी पद्धति कभी नहीं रही है और हमारे साक्षियों में से किसी ने भी इस पद्धति को लागू करने का समर्थन नहीं किया है। ऐसी बाध्यता को लागू करने के बारे में सिद्धान्ततः आपत्ति होने के अतिरिक्त यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात पर सहमत है कि निष्पक्ष परेड के लिए अभियुक्त का सहयोग अपेक्षित है।"

III. इंगलिश विधि का इतिहास

इतिहास।

अंगुलि-चिह्न के विषय से सम्बन्धित वर्तमान विधि का विकास क्रमशः और विभिन्न प्रक्रमों में हुआ है। दोषसिद्ध किए गए अपराधियों की दशा में प्रिवेन्शन आफ क्राइम ऐक्ट, 1871 (34 एण्ड 35 विक, चैप्टर-112) में अपराधियों के फोटोग्राफ लेने के लिए विनियम बनाने का प्राधिकार दिया गया है। पैनल सर्विच्यूड ऐक्ट में फोटोग्राफ लेने के साथ नाप लेने को भी जोड़ दिया गया है और 1871 के ऐक्ट के अधीन बनाए गए विनियमों का विस्तार इस दृष्टि से कर दिया गया कि उन्हें "ऐसे सभी बन्दियों पर लागू कराया जा सके जिन्हें तत्समय किसी कारावास में परिरुद्ध किया गया हो।"

अंगुलि-चिह्न लेने[4] के लिए उपबन्ध 1896 के विनियम में किया गया जो आपराधिक बन्दियों को लागू होता है[5]। अभिरक्षा में रिमाण्ड किए गए व्यक्ति या दोषसिद्ध किए गए बन्दी की नाप, उसका फोटोग्राफ और अंगुलि-चिह्न लिए जा सकते हैं।

रिमाण्ड किए गए (प्रतिप्रेषित) व्यक्तियों और दोषसिद्ध किए गए व्यक्तियों के बीच अन्तर केवल इतना है कि रिमाण्ड किए व्यक्ति का अंगुलि-चिह्न ऐसे पुलिस अधिकारी के, जो अधीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति का न हो, आवेदन पर मजिस्ट्रेट या महानगरीयक्षेत्र में पुलिस आयुक्त या सहायक पुलिस आयुक्त द्वारा जारी किए गए वारण्ट के अनुसरण में ही लिया जा सकता है[6]। यदि रिमाण्ड किया गया ऐसा बन्दी, जो पहले कभी दोषसिद्ध नहीं किया गया है, मजिस्ट्रेट द्वारा दोष मुक्त या उन्मोचित कर दिया गया था तो उसके अंगुलि-चिह्न नष्ट कर दिए जाते थे। 1948 तक इन्हीं विनियमों में संदिग्ध व्यक्तियों के अंगुलि-चिह्न लेने के लिए बाध्य करने का एक मात्र प्राधिकार प्रदान किया गया था[7]।

ये नियम उन व्यक्तियों को लागू नहीं होते थे जिन पर संक्षिप्ततः विचारण किए जाने वाले अपराध का आरोप लगाया जाता था।

1. स्टोन का जस्टिसेज मैन्युअल (1970) खण्ड 2, पृष्ठ 2636-2637।
2. हाल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 30, पृष्ठ 596, पैरा 1143 भी देखिए।
3. आपराधिक मामलों में शनाख्त के साक्ष्य से सम्बन्धित विभागीय समिति (डिपार्टमेन्टल कमिटी आन एविडेन्स आफ आइडेंटिफिकेशन इन क्रिमिनल केसेज) (1976), पृष्ठ 97, 98।
4. लेह, "पुलिस पावर्स इन इंगलैंड एण्ड वेल्स" (1975), पृष्ठ 199-200।
5. रेगुलेशन्स फार दि मैजरिंग एण्ड फोटोग्राफी आफ क्रिमिनल प्रिजनर्स, एस० आर० एण्ड ओ० नं० 762 जो प्रिजन ऐक्ट, 1952 की धारा 16 और धारा 54 (3) द्वारा प्रवृत्त बना रहा।
6. एस० आर० एण्ड ओ० नं० 762, पैरा 3,4,5।
7. सर जे० मोलान, स्काटलैण्ड यार्ड (1929), पृष्ठ 192-194।

इस विधि को क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट, 1948 की धारा 40 द्वारा परिवर्तित कर दिया गया और उसके स्थान पर मजिस्ट्रेट्स कोर्ट्स ऐक्ट, 1952 की धारा 40 रखी गई है जो (तत्पश्चात् यथासंशोधित रूप में[1]) वह मुख्य विधायी उपबन्ध है जिसे अंगुलि-चिह्न के बारे में लागू किया जाता है।

(यथासंशोधित) धारा 40 में यह उपबन्ध है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जो चौदह वर्ष से कम आयु का नहीं है, अभिरक्षा में लिया गया है या उस पर मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष अपराध का आरोप लगाया गया है, तो न्यायालय ऐसे पुलिस अधिकारी के, जो निरीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति का न हो, आवेदन पर यह आदेश दे सकता है कि उसके अंगुलि-चिह्न या हथेली के छाप कान्स्टेबुल द्वारा लिए जायेंगे[2]।

IV. इंग्लैंड में अवैध रूप से अभिप्राप्त साक्ष्य

बल प्रयोग द्वारा अभिप्राप्त साक्ष्य का अग्राह्य न होना।

किन्तु सम्बद्ध व्यक्ति की सहमति के बिना उससे बलपूर्वक प्राप्त किया गया साक्ष्य अवश्यमेव अग्राह्य नहीं है। ला क्वार्टरली रिव्यू में[3] एक नोट में इसकी स्थिति इस प्रकार व्यक्त की गई है :—

"यह स्पष्ट रूप से युक्तियुक्त और न्यायसंगत बात है कि पुलिस द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में की गई संस्वीकृतियों और किए गए अन्य कथनों को कड़ा नियम लागू होना चाहिए। ऐसे उत्तर और कथन तब तक ग्राह्य नहीं हैं जब तक कि यह इस अर्थ में दर्शित नहीं कर दिया जाता है कि वह किसी धमकी या उत्प्रेरण द्वारा अभिप्राप्त नहीं किया गया है।"

"एक ओर कथनों और संस्वीकृतियों तथा दूसरी ओर ऐसे साक्ष्य के बीच, जिसे **शारीरिक साक्ष्य**[4] कहा जा सकता है, जो अन्तर है वह सर्वथा तर्कसंगत है क्योंकि संस्वीकृतियों और कथनों की दशा में यह खतरा है कि वे मिथ्या हो सकते हैं। दूसरी ओर शारीरिक साक्ष्य पर किसी धमकी या उत्प्रेरणा का प्रभाव नहीं पड़ सकता है। अतः संस्वीकृतियों की ग्राह्यता के सम्बन्ध में न्यायाधीश के नियम अंगुलि-चिह्नों को लागू नहीं होते हैं।"

V. आस्ट्रेलिया में स्थिति

आस्ट्रेलिया में फोटोग्राफ।

आस्ट्रेलिया में[5] उच्च न्यायालय को फोटोग्राफों की स्थिति पर विस्तार से विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उच्च न्यायालय ने इस बात को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस आफेन्सेज़ ऐक्ट, 1953 से 1967 (स्टेट आफ साउथ आस्ट्रेलिया) में ऐसे व्यक्ति को, जो कोई अपराध करने के आरोप में विधिपूर्ण अभिरक्षा में है, फोटोग्राफ इस प्रयोजन के लिए लेना अनुज्ञात है कि ऐसे व्यक्ति की शनाख्त उस व्यक्ति से मिलाकर सिद्ध की जा सके जिसके बारे में यह ज्ञात है कि उसने वह अपराध को किया है जिसका उस समय अन्वेषण किया जा रहा है। उच्च न्यायालय ने यह कहा था कि पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा करने की शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह अपना फोटोग्राफ शनाख्त से भिन्न किसी और प्रयोजन के लिए लेने दे, अर्थात् शनाख्त के लिए उससे उसी विस्तार तक अपेक्षा की जा सकती है जहां तक कि कानून में वर्णित है।

इस विशिष्ट मामले में अभियुक्त के हाथ का फोटोग्राफ लिया गया था और उसका उपयोग चिकित्सीय विशेषज्ञ को यह राय कायम करने में सहायता देने के लिए किया गया था कि अभियुक्त के दाहिने हाथ पर खरोंचें उस चाकू को हाथ से इस्तेमाल करने के कारण हुई होंगी जिसका हैंडल टूट गया था। अभियुक्त पर रसोईघर (किचन) में एक स्त्री की हत्या कर देने का आरोप लगाया गया था और किचन में ड्राअर में पाए गए चाकुओं में से तीन चाकुओं पर मानव रक्त प्रोटीन के निशान थे और उनमें से एक चाकू का हैंडल टूट गया था। इस बात का साक्ष्य था कि इस घटना के दो दिन पहले वह हैंडल ठीक हालत में था।

न्यायालय ने विवेकाधिकार का प्रयोग करके प्रश्नगत साक्ष्य को ग्राह्य नहीं माना और उसे अपवर्जित कर दिया।

1. क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट, 1967 की धारा 33 द्वारा।
2. लेह, पुलिस पावर्स इन इंग्लैंड एण्ड वेल्स (1975), पृष्ठ 200।
3. **कॉलिस बनाम गन** के बारे में नोट (1963) 3, डबल्यू० एल० आर० 935 (1964) 80 एल० क्यू० आर० 17, 18।
4. शारीरिक साक्ष्य अभिव्यक्ति पर ध्यान दीजिए।
5. **क्वीन** बनाम आवरलैंड (1970), 44 आस्ट्रेलियन ला जर्नल रिपोर्ट्स 263, 268।

अवैध रूप से अभिप्राप्त साक्ष्य।

इंग्लैंड की और आस्ट्रेलिया की भी पद्धति के अनुसार कोई साक्ष्य केवल इस तथ्य के कारण अग्राह्य नहीं हो जाता है कि वह अवैध रूप से अभिप्राप्त किया गया था किन्तु यह एक ऐसा आधार हो सकता है जिससे न्यायालय उस साक्ष्य को अपवर्जित करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे। कुछ समय पूर्व आस्ट्रेलिया ला जर्नल[1] में प्रकाशित एक लेख में इस विषय की विस्तार से चर्चा की गई है। सामान्य बात यह है कि यदि साक्ष्य "अन्यायपूर्ण आचरण या अनुचित रूप से" अभिप्राप्त किया गया है तो न्यायाधीश अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके ऐसे साक्ष्य को अपवर्जित कर देगा। इस प्रतिपादना को प्रिवी कौंसिल के अभी हाल के ही एक निर्णय में[2] फिर दुहराया गया है।

स्काटलैंड में स्थित इस दृष्टि से अधिक रोचक है कि साक्ष्य तब तक ग्रहण नहीं किया जाता है जब तक कि न्यायाधीश अपने विवेकाधिकार से उसके ग्राह्य होने का अनुमोदन न कर दे[3]।

VI. कनाडा

कनाडा में रिपोर्ट किए गए एक मामले[4] में ओन्टारिओ कोर्ट आफ अपील ने 1973 में इस प्रश्न पर विचार किया था कि क्या अभियोजन पक्ष के लिए यह साक्ष्य पेश करना उचित है कि अभियुक्त ने शनाख्त परेड में भाग लेने से इंकार किया था? विचारण करने वाले न्यायाधीश ने अपने निर्णय का संक्षेप करते हुए कहा था कि ऐसा कोई कानूनी प्राधिकार नहीं है जिससे किसी अभियुक्त व्यक्ति या संदिग्ध व्यक्ति को या पुलिस थाने में किसी व्यक्ति को पंक्ति में खड़े होने के लिए मजबूर किया जा सके और समस्त साक्ष्य के आधार पर जूरी को यह विनिश्चय करना था कि मिस्टर मारकास ने पंक्ति में खड़े होने के लिए कहे जाने पर जो इंकार किया था उसका कितना महत्व दिया जाना चाहिए।

अपील में अपील की सुनवाई करने वाले दो न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस निदेश का उस सिद्धान्त से कोई विरोध नहीं है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता कि वह अपने को अपराध में फंसाए। इन न्यायाधीशों ने यह कहा था कि :—

> "वह विशेषाधिकार बन्दी से मौखिक संस्वीकृतियों या कथनों को अभिप्राप्त करने के सम्बन्ध में है। इस मामले में जो साक्ष्य पेश किया गया है उसका सम्बन्ध अभियुक्त के आचरण से है, न कि इस बात से कि उसने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप के बारे में क्या कहा था या क्या नहीं कहा था। अतः यह इस सिद्धान्त (अर्थात् अपने को अपराध में फंसाने के विरुद्ध विशेषाधिकार) के अधीन उसके अधिकारों पर आक्रमण करना नहीं है। यह केवल ऐसी परिस्थिति है जिस पर जूरी को अन्य सभी परिस्थितियों के साथ विचार करने का हक है।"

ब्रुक जे० ए० ने इससे विसम्मति प्रकट करते हुए अपने निर्णय में कहा था कि अपराध में अपने को फंसाने के विरुद्ध जो विशेषाधिकार अपीलार्थी में निहित हैं उसके आधार पर अपीलार्थी को शनाख्त परेड के लिए पंक्ति में खड़े होने से इंकार करने का अधिकार प्राप्त है और इस अधिकार का प्रयोग किए जाने पर नकारात्मक निष्कर्ष निकालना अपीलार्थी को उस अधिकार से ही भागतः वंचित करने के बराबर होगा।

VII. सिविल विधि वाले देश

सिविल विधि वाले देशों में भी स्थिति सारतः भिन्न प्रतीत नहीं होती है। सम्भवतः इसी कारण से योरोप में जहां आवश्यक है वहां की दण्ड प्रक्रिया संहिता में शनाख्त के लिए पुलिस द्वारा प्रपीड़न के उपायों का प्रयोग किए जाने के बारे में विनिर्दिष्ट उपबन्ध हैं[5]।

स्वीडन।

स्वीडन में आवाज द्वारा शनाख्त किए जाने के लिए संदिग्ध व्यक्ति और अन्य व्यक्ति ने अनेक अवसरों पर यथोचित पाठ को टेप पर पढ़ा है जिसे बाद में चलाकर साक्षी को सुनाया जाता है[6]।

1. डी० सी० पियर्स, "जुडिशियल रिव्यू आफ सर्च वारण्ट" (1970) ए० एल० जे० 467,481।
2. किंग बनाम रेजिनम (1969) ए० सी० 304 (पी० सी०)।
3. किंग बनाम रेजिनम (1969) ए० सी० 304 (1968) 2 इला० ई० आर० 610, 612, 617 (पी० सी०)।
4. आर बनाम मारकास एण्ड सालोमन (1973) 23 सी० आर० एन एस 51 (ओन्टारिओ) जिसके प्रति निर्देश आपराधिक मामलों में शनाख्त के साक्ष्य से सम्बन्धित विभागीय समिति (डिपार्टमेंटल कमिटी आन एविडेंस आफ आइडेंटीफिकेशन इन क्रिमिनल केसेज) ने किया है, (1976) पृष्ठ 193।
5. उदाहरण के लिए, जर्मन कोड आफ क्रिमिनल प्रोसीजर की धारा 81-क।
6. आपराधिक मामलों में शनाख्त के साक्ष्य से सम्बन्धित विभागीय समिति (1976), परिशिष्ट एल० पृष्ठ 196, पैरा 36।

परिशिष्ट 2

अंगुलि-चिह्न और नाप के सम्बन्ध में अमरीकी विधि

I. संयुक्त राज्य अमरीका—परिसंघीय

अधिकारिता का आधार

संयुक्त राज्य अमरीका में, दण्ड प्रक्रिया के क्षेत्र में परिसंघीय संवैधानिक अधिकारिता का सबसे प्रमुख आधार संविधान का चौदहवां संशोधन है जिसमें व्यक्ति पर उसके जीवन, उसकी स्वतंत्रता या सम्पत्ति के सम्बन्ध में निर्बन्धन लगाने के लिए "सम्यक् प्रक्रिया" का पालन करने की शर्त है इस आज्ञा (मैनडेट) से कि सम्यक् प्रक्रिया का पालन अवश्य किया जाना चाहिए परिसंघीय न्यायालयों (फेडरल कोर्ट्स) को यह अधिकारिता मिल गई है जिसके अधीन वे बहुधा विधि प्रवर्तक अभिकरणों (एजेन्सियों) और न्यायालयों से कुछ आदर्शों का पालन करने की अपेक्षा करते हैं। ये आदर्श मुख्यतया संविधान के प्रथम दस संशोधनों से लिए गए हैं जिनमें विभिन्न गारण्टियां दी गई हैं और इनके अन्तर्गत कुछ गारण्टियां दण्ड प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी हैं।

ये संशोधन अपनी शब्दावली से राज्यों को लागू नहीं होते हैं किन्तु सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चयों की शृंखला के आधार पर राज्यों को लागू हो गए हैं। चौदहवें संशोधन में प्रयुक्त "सम्यक् प्रक्रिया" शब्दों का अर्थान्वयन इन विनिश्चयों में इस प्रकार किया गया है कि उचित विचारण के सभी आवश्यक तत्व इन शब्दों के अन्तर्गत आ जाते हैं और इसलिए इन शब्दों में प्रथम दस संशोधनों द्वारा गारंटी दिये गए मूल अधिकारों में से बहुत से अधिकार सम्मिलित हैं।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि प्रथम दस संशोधनों में दी गई कोई विशिष्ट गारण्टी इतनी मौलिक है कि वह इस दृष्टिकोण को न्यायोचित ठहराती है कि उसे "सम्यक् प्रक्रिया" का अंग माना जाना चाहिए तो राज्यों को भी उनका पालन अवश्य करना चाहिए। इसी आधार पर अपराध में अपने को फंसाने के विरुद्ध विशेषाधिकार (पांचवां संशोधन) और अनुचित तलाशी तथा अभिग्रहण के विरुद्ध संरक्षण (चौथा संशोधन) राज्यों को लागू हो गए हैं।[1-2]

II. संयुक्त राज्य अमरीका में अपने को अपराध में फंसाने के विरुद्ध विशेषाधिकार

संयुक्त राज्य के संविधान के पांचवें संशोधन में यह उपबन्ध है कि किसी भी व्यक्ति को "किसी आपराधिक मामले में अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।" आएवा और न्यूजेरसी को छोड़कर अन्य प्रत्येक राज्य के संविधान में इसी प्रकार की गारंटी दी गई है। इओवा राज्य ने अपने "सम्यक् प्रक्रिया खण्ड" में इस विशेषाधिकार को सम्मिलित किया गया माना है और न्यूजेरसी ने इसे कानून द्वारा अपना लिया है।[3-4]

संयुक्त राज्य अमरीका में विशेषाधिकार अपने को अपराध में फंसाने के विरुद्ध प्राप्त है उसका निर्वचन सर्वत्र इस तरह से किया गया है कि वह अभियुक्त को अपने विरुद्ध परिसाक्ष्य देने के लिए अवमान शक्ति (आज्ञा का पालन न करने पर दण्ड देने की शक्ति) का प्रयोग करने की धमकी देकर बाध्य किए जाने से संरक्षण प्रदान करता है।[5]

बाध्य करने और प्रतिकूल टीका टिप्पणी करना अनुज्ञात न होना।

अतः साधारणतया यह उपधारणा की जाती है कि यह विशेषाधिकार ऐसे सभी प्रकार के दबाव को, जो अभियुक्त पर उसे अपने विरुद्ध परिसाक्ष्य देने के लिए डाला जाए और अभियुक्त की ऐसी टीका-टिप्पणी करने को, जो उसके प्रतिकूल उस दशा में की जा सके जब कि वह अपने विरुद्ध परिसाक्ष्य देने में असफल रहता है, प्रतिषिद्ध करता है।

विशेषाधिकार की इस विचारधारा का इतिहास जटिल है। इंग्लैंड में अभियुक्त से किए गए सभी परिप्रश्नों के बारे में सन्देह उन पद्धतियों की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुआ था जो हाई कमीशन और किंग्स स्टार चैम्बर ने अलोकप्रिय धार्मिक और राजनीतिक विधियों को लागू करने के लिए सोहलवीं शताब्दी के अन्त में और सतरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अपनाया था। कभी-कभी अभियुक्त व्यक्तियों को अवमान-शक्ति का प्रयोग करने और यंत्रणा देने का भय दिखा कर अपने विरुद्ध परिसाक्ष्य देने के लिए बाध्य किया गया था। इसके अलावा उन्हें प्रायः उस बात की जानकारी

---

1. मैफ बनाम ओहियो, (1961) 367, यू० एस० 643।
2. मैलाय बनाम होगन, (1964) 378 यू० एस० 1।
3. अमाना सोसाइटी बनाम सेलजर, (1959) 250 इओवा 380,383,94 एन० डब्ल्यू 2 डी 337,339।
4. एन० जे० रैव्य स्टेट 2ए, 84 ए–17 (सप्लीo 1963) माडेल कोड आफ एविडेन्स रूल 203, कमेंट (1942) को सामान्य रूप से देखिए।
5. मीकौमिक, एविडेंस (1954) 126, 263 और 264।

नहीं दी जाती थी कि उनके विरुद्ध कौन सा विनिर्दिष्ट आरोप है और इस तरह उन्हें न केवल अपने को अपराध में फंसाने के लिए बाध्य किया जाता था बल्कि आरोप लगाने की सामग्री देने के लिए भी बाध्य किया जाता था।[1] इसकी प्रतिक्रिया में इस नियम का विकास हुआ कि अवमान-शक्ति का प्रयोग अभियुक्त पर विनिर्दिष्ट रूप से आरोप लगा देने के बाद भी उसे परिसाक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। परामर्शदाता से कानूनी राय प्राप्त करने और साक्षियों को बुलाने के लिए जो अधिकार अभियुक्त को मिल गए हैं उन अधिकारों का और उसके साथ इस परम्परा का कि अभियुक्त को शपथ नहीं दिलायी जानी चाहिए यह परिणाम हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी मे अभियुक्त के लिए अनिवार्य रूप से चुप रहने का एक साधारण नियम बन गया। इस अवधि के दौरान इस विशेषाधिकार का महत्व बहुत बढ़ गया क्योंकि ज़बरदस्ती चुप रहने से दोष का तर्कपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था।

अभियुक्त साक्षी के रूप में।

जब निर्दोष व्यक्ति के प्रति ऐसी चिन्ता होने के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह विधान बनाया गया जो अभियुक्त को इस बात के लिए समर्थ करता है कि यदि वह चाहे तो परिसाक्ष्य दे सकता है तब संयुक्त राज्य अमरीका में इस बात का उपबन्ध अधिनियमों में साधारणतया किया गया कि यदि अभियुक्त परिसाक्ष्य देने में असफल रहता है तो इससे उसके प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

III. संयुक्त राज्य अमरीका—जो परिसाक्ष्य नहीं है उसे देने के लिए बाध्य करना अनुज्ञात है।

संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट ने अभी हाल के अनेक विनिश्चयों में यह बताया है कि ऐसे सभी साक्ष्य को, जिन्हें देने के लिए अभियुक्त को बाध्य किया जाता है, पांचवें संशोधन द्वारा संरक्षण प्राप्त नहीं है।[2-3] **शमरबर** बनाम **कैलीफोर्निया**[4] के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित विचार प्रकट किया था :—

> "———जो भिन्नता प्रकट हुई है वह यह है कि यह विशेषाधिकार "संवाद" या "परिसाक्ष्य" के लिए बाध्य करने के विरुद्ध वर्जन है किन्तु संदिग्ध या अभियुक्त व्यक्ति से ही "वास्तविक या शारीरिक" साक्ष्य प्राप्त करने के लिए की गई बाध्यता इस विशेषाधिकार का अतिक्रमण नहीं करती है।"

इस भिन्नता के सिद्धान्त को लागू करके न्यायालयों ने निम्नलिखित कार्यों को उचित अभिनिर्धारित किया है :—

(i) अभियुक्त को पंक्ति में खड़े होने के लिए बाध्य करना[5], (ii) हस्तलेख के नमूने[6], आवाज के नमूने[7] देने के लिए (iii) रक्त के नमूने[8] और अंगुलि-चिह्न[9] देने के लिए (iv) अपराध से सम्बन्धित कपड़े पहनने के लिए[10] (v) दुर्घटना स्थल पर अपनी उपस्थिति के बारे में स्वयं शनाख्त करने के लिए।[11-13]

सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ऐसी प्रक्रियाएं विशेषाधिकार का अतिक्रमण इस कारण नहीं करती हैं कि वे अभियुक्त को केवल "अपनी शारीरिक विशेषताएं प्रदर्शित करने के लिए बाध्य करती हैं, न कि कोई ऐसी जानकारी प्रकट करने के लिए जिसका उसे ज्ञान हो।"[14]

---

1. **फरगुसन** बनाम **जार्जिया**, 365 यू० एस० 570, 573-78 (हिस्ट्री आफ इन्कम्पीटेंसी डोक्ट्राइन) भी देखिए।
2. अरानसन "साइकैट्रिक एक्जामिनेशन" (1973-74) 26, स्टैंफोर्ड ला रिव्यू 55,67,68।
3. 16 एल० एण्ड, (सैकेण्ड) 1332 देखिए।
4. **शमरबर** बनाम **कैलीफोरनिया**, (1966) 384 यू० एस० 757, 764 और **गिलबर्ट** बनाम **कैलीफोरनिया**, (1967) 388 यू० एस० 263 **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **वोर्ड**, (1967) 388 यू० एस० 218 भी देखिए।
5. **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **वाडे**, (1967) यू० एस० 218 जिसमें प्रतिवादी से आवाज की शनाख्त के लिए बोलने की अपेक्षा करने की अनुज्ञा भी दी गई है (और **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **बुट्टो**, 393 एफ० सैकेण्ड, (फोर्थ सर० 1968) देखिए।
6. **गिलबर्ट** बनाम **कैलीफोरनिया**, (1967) 388 यू० एस० **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **डोय**, 405 एफ सेकेण्ड 436 (सैकेण्ड सर० 1968) 263,265-67।
7. **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **डियानसियो**, (1973) 410 यू० एस० 1 देखिए।
8. **शमरबर** बनाम **कैलीफोरनिया**, (1966) 384 यू० एस० 757।
9. **यूनाइटेड स्टेट्स एक्स रिले० ओ हलोरन** बनाम **रंडल**, 266 सपी० 173 (ई० डी० पा०) ए एफ डी 384 एफ सैकेण्ड 997 (थर्ड सर 1967) सर्ट का प्रत्याख्यान किया गया (1969) 393 यू० एस० 860 देखिए।
10. **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **इवान** 389, एफ० सैकेण्ड (थर्ड सर) सर्ट० का प्रत्याख्यान किया गया (1966) 385 यू० एस० 63, **मोरिस** बनाम **स्टेट**, 180 सौ० सैकेण्ड 199 (फ्ला० अपी० 1966) देखिए।
11. **कैलीफोरनिया** बनाम **वेयर्स**, (1971) 402 यू० एस० 424 देखिए।
12. फैडरल कोर्ट की निर्णयज विधि आरसन में "साइमैटिक एग्जामिनेशन" (1973-74) 26 स्टैनफार्ड ला रिव्यू 55, 67, 68, से मुख्यतया ली गई है।
13. और अमरीकन जुरिसप्रुडेंस, सैकेण्ड, आर्टिकिल 314-316 (क्रिमिनल ला) भी देखिए।
14. **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **वाडे** (1967) 388 यू० एस० 218, 222।

वाणी अभिलेखन से सम्बन्धित नवीनतम मामले[1] में इस मत की पुनः अभिपुष्टि की गई है कि हस्तलेख का नमूना (लिखित कृति की विषय-वस्तु से भिन्न) आवाज या शरीर की ही भांति होता है और इससे शारीरिक विशेषता की शनाख्त होती है जो पांचवें संशोधन द्वारा प्रदान किए जाने वाले संरक्षण के बराबर है। इस बात पर जोर डाला गया था कि आवाज की रिकार्डिंग्स का उपयोग सम्बद्ध व्यक्ति की आवाज के प्राकृतिक तत्वों की नाप करने के एकमात्र प्रयोजन के लिए किया जाता है और जो कुछ कहा गया है उसमें परिसाक्ष्य या संवाद का विषय-वस्तु के लिए नहीं किया जाता है।

IV. सम्यक् प्रक्रिया

किन्तु सम्यक् प्रक्रिया का अतिक्रमण वहां अनुज्ञात नहीं है जहां पुलिस की पद्धति "सद्‌विवेक को आघात पहुंचाती है"–जैसे कि अभियुक्त के शरीर से पदार्थ निकालने के लिए जब पेट को खाली करने के पम्प का प्रयोग किया जाता है। ऐसा साक्ष्य ग्राह्य नहीं है।[2]

एक बेहोश अपराधी से रक्त का नमूना लेने के मामले में इसी कसौटी को लागू किया गया था किन्तु इस मामले में यह साक्ष्य में ग्राह्य माना गया।[3]

एक अमरीकी लेखक ने संवैधानिक गारण्टियों (साक्ष्य अपवर्जित करने का नियम) के अतिक्रमण के प्रभाव की चर्चा करने के पश्चात् कहा है कि[4] –

> "इस नियम (सम्यक् प्रक्रिया) के नियम के अन्तर्गत ये बातें होती हैं :–विधिक परामर्शदाता की उपस्थिति के बिना पंक्ति में खड़े रहने के दौरान शनाख्त–––––––––––––––स्वीकृतियां जो पुलिस द्वारा निरुद्ध किए जाने के दौरान उस दशा में ली गई हों जबकि बन्दी को यह अवसर न मिला हो कि वह विधिक परामर्शदाता को उपस्थित करा सके।"

सम्यक् प्रक्रिया पालन करने का जो निर्बन्धन है उसके अन्तर्गत प्रतिवादी की ओर से वैज्ञानिक साक्ष्य पेश करने पर तब तक कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है जब तक कि इसे पेश करने के तरीके अपेक्षतया सभ्य और वैज्ञानिक रूप से उचित हैं।[5] अत्यावश्यक यातायात विधि लागू करने की मांग के कारण शराब के परीक्षण के परिणाम[6] साक्ष्य में ग्राह्य हो गए हैं और इसी कारण राडारगति साक्ष्य भी ग्राह्य हो गया है।[7]

एक संदिग्ध व्यक्ति को विशेष प्रकार का कपड़ा पहनने के लिए तब मजबूर किया जा सकता है जबकि यह कपड़ा शनाख्त करने में सारवान् साक्ष्य हो।[8]

V. अंगुलि-चिह्न और फोटोग्राफ

ऐसा प्रतीत होता है कि संयुक्त राज्य अमरीका में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से अंगुलि-चिह्नों और फोटोग्राफ अनिवार्य रूप से लेने के लिए भी सामान्य पद्धति है।[9]

संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसी बाध्यता जो परिसाक्ष्य के रूप में न हो।

जसा कि पहले कहा गया है संविधान में अभियुक्त से सूचनाएं जबरदस्ती प्राप्त करने के लिए उसे शारीरिक या नैतिक रूप से बाध्य किए जाने का प्रतिषेध है और अपने शरीर को साक्ष्य के रूप में प्रदर्शित करने का (जब ऐसा साक्ष्य सारवान् हो) प्रतिषेध नहीं है।[10]

---

1. यू० एस० बनाम डियानिसियो, (1973) 410 यू० एस० 1,6।
2. रौचन बनाम कैलिफोर्निया, (1952) 342 यू० एस० 165 इसके पश्चातवर्ती इलिनास का एक विनिश्चय सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चय से मेल नहीं खाता है। स्टेट बनाम ओडोम, 353 एस० डब्ल्यू० सैकेण्ड 708 (मो० 1962)।
3. ब्रैथाप्ट अब्राम, (1957) 352 यू० एस० 432 डैलवारे में स्टेट बनाम वुल्फ, 164 ए० सैकेण्ड 865 (डैल० 1960) के मामले में इसके विपरीत निष्कर्ष निकाला गया था।
4. पीटर है, इंट्रोडक्शन टू यू० एस० ला 1976 पृष्ठ 193।
5. पीपुल बनाम ड्यूचर, 189 कल० अपी० सैकेण्ड, 720, कल० रर्पोटर० 407 (1961) देखिए। ओटे बनाम स्टेट, 172 नव० 110, 108 एन० डब्ल्यू० सैकेण्ड 737 (1961), से तुलना कीजिए।
6. उदाहरण के लिए स्टेट बनाम बेकर, 56 वाश० सैकेण्ड 846, 355 पी० सैकेण्ड 860 (1960) और स्टेट बनाम वाल 179 ए, सैकेण्ड 466 (वी० टी० 1962) देखिए, दोन बनाम स्टेट, 12 ऊटा, सैकेण्ड 76, 362 पी० सैकेण्ड 750 (1962)।
7. फिशर, विहिकिल्स ट्रैफिक ला (1961) पृष्ठ 240-243।
8. होल्ट बनाम यू० एस०, (1910) 218 यू० एस० 245, 252 (जस्टिस होम्स)।
9. मोरलैंड, क्रिमिनल प्रोसीजर (1969) पृष्ठ 76, जिसमें संयुक्त राज्य के प्रमुख मामले यू० एस० बनाम केली, (1932) 55, फेडरल सैकेण्ड 67, 83 ए० एल० आर० 122 को उद्धृत किया गया है।
10. शमरबर बनाम कैलिफोर्निया, (1967) 384 यू० एस० 757।

अतः अंगुलि-चिह्न, फोटोग्राफ, नाप लेने के लिए या शनाख्त के लिए लिखने या बोलने के लिए, या न्यायालय में हाजिर होने के लिए या खड़ा होने या कोई हावभाव प्रकट करने या चलने या किसी विशेष प्रकार से अंग संचालन करने के लिए बाध्य किए जाने के विरुद्ध कोई संवैधानिक संरक्षण नहीं है।

इसके अतिरिक्त यह भी है कि संयुक्त राज्य में अभियुक्त व्यक्तियों से यदि विशेष दृष्टिकोण अपनाने या अपनी आवाज के नमूने देने की अपेक्षा की जाती रहे तो ऐसा न करने के लिए कोई संरक्षण (संवैधानिक दृष्टि से) प्राप्त नहीं है।[2]

अतः प्रश्न केवल यह है कि नाप लेने या अन्य प्रदर्शनात्मक साक्ष्य उपाप्त करने के लिए कानूनी प्राधिकार का उपबन्ध किया जाए जिससे कि अपकृत्य का कोई दायित्व उत्पन्न न हो। संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न राज्यों में स्थिति की चर्चा करना तो कष्टसाध्य होगा।

एक मत के अनुसार[3] गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का अंगुलि-चिह्न, फोटोग्राफ या नाप लेना न तो अपने को अपराध में फंसाने[4] के विरुद्ध विशेषाधिकार का अतिक्रमण करना है और न गोपनीयता को भंग करना है।

अतः कुछ न्यायालयों के अनुसार यह कानूनी प्राधिकार के बिना भी वैध है।[5-6]

किन्तु कुछ अन्य क्षेत्रों की अधिकारिता में इससे भिन्न मत अपनाया जाता है और सहमति के बिना तथा प्राधिकार के बिना अंगुलि-चिह्न या फोटोग्राफ लेने को वादयोग्य हमला माना जाता है।[7-8]

दोषारोपण के पूर्व प्रक्रिया की आदर्श (माडल) संहिता।

कुल मिलाकर यह प्रतीत होता है कि शनाख्त के अनिवार्य उपायों के लिए विनिर्दिष्ट विधिक प्राधिकार अपेक्षित है। यद्यपि इस स्थिति पर अभिव्यक्त रूप से या विस्तार से विचार-विमर्श नहीं किया गया है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थिति हाल में ही संयुक्त राज्य अमरीका में विवक्षित रूप से स्वीकार कर ली गई है। उदाहरण के लिए, दोषारोपण के पूर्व प्रक्रिया की आदर्श संहिता में, जो अमेरिकन ला इन्स्टीट्यूट द्वारा अपनायी गई है, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के अंगुलि-चिह्न विचारण के प्रारम्भ के पूर्व प्ररूप पर अन्वेषण के प्रयोजन के लिए लेने की अनुज्ञा दी गई है।[9]

अमेरिकन ला इन्स्टीट्यूट ने यह प्रस्ताव[10] किया है कि न्यायालयों को साधारणतया इस बात के लिए सशक्त किया जाना चाहिए कि वे युक्तियुक्त सन्देह के आधारों पर शनाख्त प्रक्रियाओं में हाजिर होने के लिए आदेश जारी कर सकें। इन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत अंगुलि-चिह्न, रक्त या पेशाब के नमूने, और शनाख्त की ऐसी सामग्री लेना भी है जो शरीर के ऊपर या नाखूनों के नीचे हो, तथा पंक्ति में खड़ा करके या फोटोग्राफ लेकर या आवाज के नमूने या हस्तलेख के नमूने लेकर साक्षियों से शनाख्त कराने की प्रक्रियाएं भी हैं।

VI. वाणी अभिलेखन (वायस प्रिन्ट)

वाणी अभिलेखन।

संयुक्त राज्य अमरीका में परिसंघ (फेडरल) और राज्य स्तर पर अनेक न्यायालयों ने (जिनके अन्तर्गत मिलिट्री कोर्ट्स आफ अपील भी हैं) वाणी अभिलेखन द्वारा शनाख्त किया जाना स्वीकार कर लिया है।[11] मिलिट्री कोर्ट्स आफ अपील (सेना अपील न्यायालय)[12] के समक्ष एक रोचक मामले में वाणी अभिलेखन (वायस प्रिंटिंग) का प्रयोग उस दशा में वैध अभिनिर्धारित किया गया जिसमें दूरभाष (टेलीफोन) से अश्लील बातें की गई थीं।

---

1. गिलबर्ट बनाम कैलिफोर्निया, (1967) 338 यू० एस० 263।
2. आगे "वाणी अभिलेखन (वायसप्रिंट)" और यू० एस० बनाम वाडे, (1967) 388 यू० एस० 218 देखिए।
3. अमेरिकन जुरिस्प्रूडेंस, द्वितीय संस्करण खण्ड 21, "क्रिमिनल ला" पृष्ठ 393, 394, अनुच्छेद 369-370।
4. अमेरिकन जुरिस्प्रूडेंस, प्रथम संस्करण "प्राइवेसी" लेख 27 देखिए।
5. यूनाइटिड स्टेट्स बनाम कैली, (सीए 2) 55 एफ सैकेण्ड 67 जो अमेरिकन जुरिस्प्रूडेंस, द्वितीय संस्करण, खण्ड 21 "क्रिमिनल ला" में उद्धृत है।
6. शैनान बनाम दि स्टेट्स, 207 आर्क 658, जो अमेरिकन जुरिस्प्रूडेंस, द्वितीय संस्करण, खण्ड 21, "क्रिमिनल ला," में उद्धृत है, पृष्ठ 393-394 अनुच्छेद 369-370।
7. फिडलर बनाम मर्फी, 113, एन० टी० एस० सैकेण्ड 288 जो अमेरिकन जुरिस्प्रूडेंस, द्वितीय संस्करण, खण्ड 21, "क्रिमिनल ला" में उद्धृत है, पृष्ठ 393-394।
8. ब्लैक, ला डिक्शनरी (1914) के खण्ड 2, पृष्ठ 2586 पर "फिजिकल एक्जामिनेशन" शीर्षक के नीचे उद्धृत मामलों को भी देखिए।
9. माडेल कोड आफ प्री-अरेंजमेंट प्रोसीजर, धारा 501 (अमेरिकन ला इन्स्टीट्यूट)।
10. आपराधिक मामलों में शनाख्त के साक्ष्य से सम्बन्धित समिति (डिपार्टमेंटल कमेटी आन एविडेंस आफ आइडेंटीफिकेशन इन क्रिमिनल केसेज) (1976) पृष्ठ 194, पाद टिप्पण।
11. वैनेट सैन्टलर, ला इन्फोर्समेन्ट एण्ड क्रिमिनल जस्टिस, पृष्ठ 304-305।
12. यू० एस० बनाम राइट, (1967) 17 यू० एस० एम० ए० 183।

संयुक्त राज्य अमरीका में जो विशेषाधिकार अपने को अपराध में फंसाने के विरुद्ध प्रदान किया गया है उसका विस्तार किसी ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करने तक के लिए नहीं है जिससे बोलने की अपेक्षा इसलिए की जाती है कि उसकी शनाख्त की जा सके।[1]

वाणी अभिलेखन के बारे में विशेषाधिकार का न होना।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय का आदेश इसलिए प्राप्त किया जाता है कि अभियुक्त को अपनी आवाज टेप-रेकार्ड कराने के वास्ते बाध्य किया जाए। अतः यह कहा गया है[2] कि न्यूजेरेसी स्टेट में सुप्रीम कोर्ट ने अभियोजन की इस प्रार्थना को मंजूर कर लिया था कि अभियुक्त को अपनी आवाज टेप कराने के लिए बाध्य करने का आदेश दिया जाए जिससे कि इस प्रकार से जो वाणी अभिलेखन (वायस प्रिन्ट) किया जाए उसकी तुलना दूसरे वाणी अभिलेखन से किया जा सके।[3]

वाणी अभिलेखन का उपयोग ऐसे अपराधियों की शनाख्त के लिए किया जाता है जो दूरभाष (टेलीफोन) का प्रयोग हवाई जहाजों और लोकभवनों पर बमबारी करने की धमकी देने के लिए करते हैं और जो टेलीफोन पर अश्लील बातें करते हैं तथा रकम वसूलने की धमकी टेलीफोन से देते हैं और फिरौती की मांग भी करते हैं।[4]

वाणी अभिलेखन का उपयोग।

---

1. यू० एस० बनाम वाडे, (1967) 388 यू० एस० 218।
2. टामस मैकडाई "दि वायस-प्रिन्ट" (जुलाई 1970) इंडियन पुलिस जर्नल, पृष्ठ 26-34।
3. स्टेट बनाम मैकेन्ना (226ए) II 757, सुपीरियर कोर्ट आफ न्यू जैरेसी।
4. 'एल० जी केरस्टा वायस प्रिन्ट आइडेन्टिफिकेशन एण्ड एप्लीकेशन" (1971) इंडियन पुलिस जर्नल, पृष्ठ 10-16

परिशिष्ट 3

संविधान के अनुच्छेद 21 के सम्बन्ध में चुने हुए मामले

—विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया

1. **मेनका गांधी** बनाम् **यूनियन आफ इंडिया,** ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 597, 1978(1) एस० सी० सी० 248 ।

यह पहला मामला था जिसमें यह स्पष्ट रूप से बताया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 21 में उल्लिखित "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" की क्या अपेक्षाएं हैं और उसका वास्तविक अभिप्राय क्या है ।

2. **विशेष न्यायालय विधेयक,** 1978 **का मामला**

ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 478, 516; 1979(1) एस० सी० सी० 430, 433 ।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 की संवैधानिक वैधता को अनुच्छेद 14 की दृष्टि से उचित अभिनिर्धारित करते हुए यह विचार प्रकट किया था कि यह विधेयक अनुच्छेद 21 की दृष्टि से भी वैध होना चाहिए ।

मेनका गांधी के मामले में बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 21 में जो प्रक्रिया अनुज्ञात है वह अवश्य ही "ठीक और न्यायसंगत" होनी चाहिए और मनमानी, काल्पनिक या पीड़क नहीं होनी चाहिए, अन्यथा वह प्रक्रिया ही नहीं मानी जाएगी और अनुच्छेद 21 की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं होगी ।

अत: यह जांच करना अनिवार्य था कि विशेष न्यायालय विधेयक द्वारा जो प्रक्रिया विहित की गई है वह क्या न्यायसंगत और निष्पक्ष है या किसी रूप में मनमानी या पीड़क है ?

3. **सीताराम** बनाम **स्टेट आफ उत्तर प्रदेश,** ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 745; 753, 1979(2) एस० सी० सी० 656, 669 ।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय नियम (1966) के आदेश, 21 नियम 15(1)(ग) तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 384-क वैधता पर विचार करते समय यह कहा था कि संविधान में जिस विषय पर ध्यान विशेष रूप से दिया गया है वह अनुच्छेद 21 में व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करना है। न्यायालय ने अपने निर्णय में **मेनका गांधी** बनाम **यूनियन आफ इंडिया** के प्रति निर्देश किया है जिसमें नैसर्गिक न्याय की विचारधारा के मूल तत्व को उचित प्रक्रिया का भाग बताया गया है । उस निर्णय से यह दर्शित होता है कि उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के पूरे गूढ़ार्थ को किस तरह से प्रकट किया है और न्यायालय ने (तब से) उस निर्देशन का किस तरह से अनुसरण किया है और उसे मानवीय पक्ष की ओर विकसित किया है ।

4. **हुसैन आरा खातून** (1) बनाम **होम सेक्रेटरी,** ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1360, 1361; 1980 (1) एस० सी० सी० 81, 84 ।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिये एक अर्जी पर विचार करते हुए यह कहा था कि न्यायालय ने **मेनका गांधी** बनाम **यूनियन आफ इण्डिया** में अनुच्छेद 21 का जो प्रगतिशील निर्वचन किया है उसके पश्चात् इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता है कि ऐसी प्रक्रिया को, जो इतनी अधिक संख्या में लोगों को विचारण किये बिना इतने अधिक समय तक जेल के अन्दर रखे रहने देती है, उचित, न्यायसंगत और निष्पक्ष प्रक्रिया मानना सम्भव नहीं है ।

5. **हुसैन आरा खातून** (iv) बनाम **होम सेक्रेटरी,** ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1369; (1979) एस० सी० आर० 532, 533 ।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त के अधिकारों और राज्य के सांविधानिक दायित्व पर विचार करते हुए **मेनका गांधी** बनाम **यूनियन आफ इंडिया** के प्रति निर्देश किया था और यह कहा था कि यह अब भली भांति निश्चित हो गया है (मेनका गांधी के मामले में विनिश्चय के परिणामस्वरूप) कि इतना ही पर्याप्त नहीं था कि विधि द्वारा उपबन्धित प्रक्रिया के लिये किये जाने का आभास हो बल्कि किसी व्यक्ति को जिस प्रक्रिया के अधीन उसके प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया जाता है वह प्रक्रिया "उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत" भी होनी चाहिये। ऐसी प्रक्रिया को, जिसमें किसी ऐसे अभियुक्त को, जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं रख सकता है, विधिक सेवाएं उपलब्ध न करायी गई हों, और इस कारण उसका विचारण विधिक सहायता के बिना किया गया हो, "उचित, निष्पक्ष, और न्यायसंगत" मानना सम्भव नहीं है। "उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत" प्रक्रिया का यह एक अनिवार्य तत्व है कि यदि कोई बन्दी अपनी स्वतंत्रता न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है तो उसे विधिक सेवाएं उपलब्ध करायी जानी चाहिये।

6. **श्री गुरुबख्श सिंह सिब्बया** बनाम **स्टेट आफ पंजाब**, (1980) 2 एस० सी० सी० 565, 586।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 (पूर्वानुमानित जमानत) के विस्तार का अवधारण और इस प्रश्न पर विचार-विमर्श करते हुए कि वैयक्तिक स्वतंत्रता और पुलिस की अन्वेषक-शक्तियों के बीच किस प्रकार सर्वोत्तम रूप में समन्वय स्थापित किया जाए, यह कहा था कि धारा 438 प्रक्रिया विषयक उपबन्ध है जिसका सम्बन्ध ऐसे व्यष्टि की वैयक्तिक स्वतंत्रता से है जो निर्दोषिता की उपधारणा से फायदा उठाने का हकदार है। जिस अपराध के बारे में अभियुक्त अपनी जमानत कराना चाहता है उस अपराध के लिये वह उस तारीख को (जिस तारीख को उसने अपनी जमानत के लिये आवेदन किया था) दोषसिद्ध नहीं किया गया था। इसलिये धारा 438 में ऐसे निर्बन्धन और शर्तें अपनी ओर से नहीं जोड़ी जा सकती हैं जो इस धारा में नहीं हैं और यदि ऐसा किया जाता तो इस धारा के उपबन्ध संवैधानिक दृष्टि से आपत्तिजनक हो जाएंगे। वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार के लिये **अनुचित निर्बन्धनों के पालन किये जाने की शर्त नहीं लगायी जा सकती है।**[1]

धारा 438 में जो उपबन्ध फायदा देने वाला है उसे तो अवश्य ही बचाना चाहिये और उसे खतरे में नहीं डालना चाहिये। मेनका गांधी के मामले के पश्चात् इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि अनुच्छेद 21 में किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिये "विधि द्वारा स्थापित" प्रक्रिया की जो शर्त रखी गई है उसे पूरा करने के लिये वह प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित अवश्य होनी चाहिये।

7. **पी० एस० आर० साधनान्थम्** बनाम **अरुणाचलम्**, ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 856, 858–859।

इस रिट अर्जी में अर्जीदार ने संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील करने की इजाजत को और उसके पश्चात् भी कार्यवाहियों को अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करने वाली कार्यवाहियां बताते हुए चुनौती दी थी। उच्चतम न्यायालय से अनुच्छेद 138 और अनुच्छेद 21 के विस्तार का अधिकथन करने की मांग की गई थी। न्यायालय ने इस विषय पर विचार-विमर्श करते हुए यह कहा कि अनुच्छेद 21 में मानव की स्वाधीनता को सुरक्षित रखने के लिए बहुत ही संक्षिप्त शब्दावली का प्रयोग करने की दृष्टि से "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" शब्दों को रखा गया है और इसका पालन करने पर जोर डाला गया है। यह वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए अनिवार्य "आज्ञप्ति" नहीं है और इस प्रकार स्थापित प्रक्रिया अवश्य ही निष्पक्ष होनी चाहिए, न कि काल्पनिक या औपचारिक या दिखावटी। इस संदर्भ में मेनका गांधी के मामले के प्रति निर्देश किया गया था। अनुच्छेद 136 में किसी पक्षकार को अपील करने का अधिकार स्पष्ट शब्दों में प्रदान नहीं किया गया है किन्तु उसमें उच्चतम न्यायालय को उपयुक्त मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किया गया है।

(तथ्यों के आधार पर अपील करने के लिए पहले दी गई इजाजत को वैध अभिनिर्धारित किया गया)

---

1. जोर देने के लिए रेखांकित मोटे शब्द।

8. आनन्द वर्धन चन्देल बनाम **यूनिवर्सिटी आफ दिल्ली**, ए० आई० आर० 1978, 308, 314।

इस रिट में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न का स्वीकारात्मक उत्तर दिया था कि क्या संविधान के अनुच्छेद 19 (1) के खण्डों (क), (ख) और (ग) में और अनुच्छेद 21 में शिक्षा का मूल अधिकार होना भी पढ़ा जा सकता है ? उच्च न्यायालय ने यह कहा कि मेनका गांधी के मामले से अब यह विधि निश्चित हो गई है कि अनुच्छेद 21 में "प्राण और दैहिक स्वाधीनता" **अभिव्यक्ति के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अधिकार हैं। यद्यपि वे संविधान के भाग 3 में प्रगणित नहीं है : परन्तु वे ऐसे अधिकार तब हैं जबकि वे किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व (व्यक्तिगत विशिष्टता) के पूर्ण विकास के लिये आवश्यक हों और व्यष्टि की स्वाधीनता के विभिन्न पहलुओं के अन्तर्गत सम्मिलित किये** जा सकते हों।

9. **इन्द्र प्रकाश** बनाम **डिप्टी कमिश्नर, दिल्ली**, ए० आई० आर० 1980 दिल्ली 87, 92।

इस मामले में उच्च न्यायालय ने उस आदेश को अभिखण्डित कर दिया जिसके द्वारा अर्जीदार का चिकित्सीय विद्यार्थी के रूप में प्रवेश इस कारण रद्द कर दिया गया था कि अर्जीदार ने अपने अध्ययन काल के दौरान लगभग चार वर्ष के लिए अत्यधिक विलम्ब कर दिया था। इस मामले में **मेनका गांधी** बनाम **यूनियन आफ इंडिया** के प्रति निर्देश यह दर्शित करने के लिए किया गया था कि उच्चतर शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा मूल अधिकार के स्वरूप का एक अधिकार है, यद्यपि इसका विनिर्दिष्ट रूप से वर्णन संविधान में नहीं किया गया है। ऐसी शिक्षा ग्रहण करने में अनुचित बाधा डालने से व्यवसाय करने के मूल अधिकार का उल्लंघन होगा।

परिशिष्ट 4

बन्दी शनाख्त अधिनियम, 1920

मूल उपबन्धों का विश्लेषण

धारा	प्रभावित व्यक्ति	प्रदत्त शक्ति का स्वरूप	सक्षम प्राधिकारी
3.	दोषसिद्ध किए गए व्यक्ति	नाप (अधिनियम में इसकी जैसी परिभाषा दी गई है उसके अनुसार—इसके अन्तर्गत अंगुलि-चिह्न भी हैं)	पुलिस अधिकारी (इसमें निम्नलिखित अधिकारी अभिप्रेत हैं :— (i) पुलिस थाने का भारसाधक पुलिस अधिकारी (ii) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अध्याय 14 के अधीन अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी, या (iii) कोई अन्य पुलिस अधिकारी, जो उप-निरीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति का न हो)
3.	सिद्धदोष किये गये व्यक्ति	फोटोग्राफ	पुलिस अधिकारी। इससे निम्नलिखित अधिकारी अभिप्रेत हैं :— (i) पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी (ii) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अध्याय 14 के अधीन अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी, या (iii) कोई अन्य पुलिस अधिकारी, नीचेजो उपनिरीक्षक की पंक्ति से का न हो।
4.	गिरफ्तार किए गए व्यक्ति	नाप (जैसी परिभाषा दी गई है उसके अनुसार—इसके अन्तर्गत अंगुलि-चिह्न भी हैं)	पुलिस अधिकारी [धारा 2 (ख) जैसी परिभाषा दी गई है उसके अनुसार]
5.	कोई व्यक्ति (किन्तु वह किसी प्रक्रम पर अवश्य गिरफ्तार किया गया हो—द्वितीय परन्तुक देखिए)	नाप (जैसी परिभाषा दी गई है उसके अनुसार—इसके अन्तर्गत अंगुलि-चिह्न भी हैं)	मजिस्ट्रेट
6.	कोई व्यक्ति (किन्तु वह किसी प्रक्रम पर अवश्य गिरफ्तार किया गया हो)	फोटोग्राफ	प्रथम वर्ग का मजिस्ट्रेट (प्रथम परन्तुक देखिए)

81-M/P(N)57MofLJ&CA—500—18-12-82—GIPS

पी. एल. डी. 92. LXXXVII (एन.)
500—1981 (डी. एस. के. IV)

मूल्य : (देश में) रु 24·00 (विदेश में) पौंड 2·80 या 8$ 64 सैंटस्

1983

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय शिमला द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित ।